केरल ज्योति

जून 2025

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा

श्री चित्रा पब्लिक स्कूल के प्रवेशोत्सव का उद्घाटन किषुविलम पंचायत के उपाध्यक्ष अधिवक्ता आर.श्रीकण्ठन नायर कर रहे हैं।

श्री चित्रा पब्लिक स्कूल के 'प्रवेशोत्सव' में सभा के मंत्री द्वीप प्रोज्वलन कर रहे हैं

केन्द्र सरकार का स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य नामित होने पर Employees Association सभा के मंत्री का अभिनंदन करते हैं।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. एम एस विनयचंद्रन
डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 62 दल : 3 अंक: **जून 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 6

कथा साहित्य में जीवन की विकृतियाँ - मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य के विशेष संदर्भ में - **डॉ लेखा पी** 11

वैवाहिक संबंधों का वैविध्यपूर्ण चित्रण : साठोत्तर नाटक **डॉ अनुराधा गोस्वामी** 13

विकलांग विमर्श : एक समावेशी दृष्टिकोण - **वनीता रानी** 17

विपिन बिहारी की कहानियों में प्रतिरोध का स्वर - 'कन्धा' में संकलित कहानियों के विशेष संदर्भ में - **मुहम्मद साबित टी** 21

विकास बनाम विस्थापन : 'विस्थापित' उपन्यास के प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 24

विशेष संदर्भ में - **डॉ अनघा ए एस** 25

स्वयं प्रकाश की कहानियों में पर्यावरण - **दिव्या जी आर** 29

'अंतिम सत्याग्रह' उपन्यास में गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव-**डॉ उपेंद्र कुमार** 31

दलित चेतना की तहरीर : 'सिलिया' - **डॉ जयश्री ओ** 35

अध्यापन पेशे की आदर्श शख्सियत : डॉ वी के हरिहरन उण्णित्तान - **डॉ एन सुरेष** 38

21 वीं सदी में स्त्री अस्मिता के संघर्षों का उपन्यास - गीताश्री का 'कैद बाहर' - **जानकी** 40

अमृत काल में हिंदी सिनेमा का परिदृश्य - **डॉ गोकुल क्षीरसागर** 44

देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना** 47

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) **मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार** 49

मुखचित्र : केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) बी मधु को केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति में सदस्य नामित किये जाने के उपलक्ष्य में सभा के अध्यक्ष गुलदस्ता देकर अभिनंदन करते हैं।

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/- ***आजीवन चंदा : रु. 4000/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 400/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222/ 9447657301
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
जून 2025

संपादकीय

केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) मधु बी बतौर हिंदी सलाहकार चयनित

केरल हिंदी प्रचार सभा को हाल ही में वैश्विक पटल पर सम्मान प्राप्त हुआ था। 2022 का विश्व हिंदी सम्मान केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) मधु बी ने फिजी में पधारकर स्वीकारा था। वह एक ऐतिहासिक क्षण था। अब और एक सम्मान उन्हें प्राप्त हुआ है। केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के हिंदी सलाहकार समिति में उन्हें भी सम्मिलित किया गया है। जिस तरह भारतीय कथा परंपरा संदेशों को प्रवाहित करने के लिए मानी जाती है उसी तरह केरल हिंदी प्रचार सभा को हिंदी का परचम लहराने वाली संस्था के रूप में मान्यता दी जाती है और उसके मंत्री के रूप में अधिवक्ता (डॉ) मधु बी का भव्य सान्निध्य है।

1934 में स्थापित यह महान संस्था आज भी सतत भाषा सेवा में जुड़ी रहकर देश सेवा कर रही है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के उद्‌यमों में एक था हिंदी प्रचार एवं हिंदी सेवी संस्थाओं की स्थापना। राष्ट्रपिता इसके माध्यम से एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहते थे। राष्ट्र को एक सरित सूत्र में बाँधकर राष्ट्रोन्नति एवं एकता संभव हो जाए, यही उनकी मनोकामना थी। इसी तिग्म संदेश को अमल करने हेतु स्वर्गीय के वासुदेवन पिल्लैजी ने केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम में तिरुवितांकूर हिंदी प्रचार सभा (बाद में केरल हिंदी प्रचार सभा) की स्थापना की जो आज समूचे केरल राज्य में फैली हुई है। पिल्लै जी के पश्चात मंत्री के तौर पर स्वर्गीय वेलायुधन नायरजी के आगमन से सभा की उन्नति ज़ोर पकड़ ली। आपके शिष्य व अनुगामी अधिवक्ता (डॉ) मधु बी अब मंत्री के पद पर विराजमान है। मधु जी के तन-मन-धन प्रयास एवं उनके सहयोगियों के कर्तव्य निष्ठा से सभा अब हिंदी प्रचार के क्षेत्र में अगुआई कर रही है। भारतीय थल सेवा में अफसर के पद से सेवा निवृत्त इस राष्ट्रहितकारी व्यक्तित्व को सलाहकार समिति में स्थान दिलाकर भारत सरकार ने न्यायोचित काम किया है। इससे ज्ञात होता है कि भारत सरकार राष्ट्र के प्रति कितने सतर्क है।

मंत्री अधिवक्ता (डॉ) मधु बी के नेतृत्व में केरल हिंदी प्रचार सभा ने गत वर्षों में अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की है। चतुर्दिक नवीन आभा बिखेरती हुई सभा आज भी राष्ट्र सेवा में जुड़ी हुई है। विभिन्न शैक्षणिक, सामाजिक, व सांस्कृतिक कार्यकलापों के द्‌वारा हिंदी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति मज़बूत करने में सभा सफल हुई है। आचार्य शुक्ल ने कहा था जब हमें अपनी ही स्थिति में अनुकूल परिवर्तन करने की सामर्थ्य नहीं है तब हम दूसरे की स्थिति में कहाँ तक परिवर्तन कर सकते हैं। सभा एवं उसके मंत्री में स्वयं को परिवर्तित करने का सामर्थ्य है और उसके माध्यम से दूसरे भी परिवर्तित एवं शिक्षित हो रहे हैं। एतदर्थ यही सभा का लक्ष्य है।

समूचे केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार की यही कामना है कि सभा हिंद व हिंदी सेवा में हमेशा ही इस तरह अग्रणी रहे।

डॉ रंजीत रविशैलम, संपादक

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

छब्बीसवाँ सर्ग

सारे धर्मों का लक्ष्य

1. स्वधर्मों के द्वारा भिन्न-भिन्न धर्मावलंबी भी
होते हैं अग्रसर एक ही लक्ष्य की ओर और ऐसा
सोच उठा है केवल भ्रमवश और इसलिए सब हो
समवेत कि एक ही धर्म है और यही सत्य भी है।

2. गुरुदेववाणी सुनकर कहा एक शिष्य ने कि हे सर्वज्ञ!
जो शंकायें उठीं धर्म के नाम पर हो गयी दूर और
अब हमें बतलावें एकेश्वर के बारे में और सुनकर
शिष्य की जिज्ञासा कहने लगे गुरुदेव इस प्रकार।

3. असल में सर्वेश्वर रूपी एक ही ईश्वर हैं जो हैं
इस मायाबद्ध संसार के स्वामी सर्वज्ञानी और सर्वशक्त
जिसके बारे में कहा है तत्त्वज्ञानी ऋषियों ने भी
कि सर्वेश्वर एक ही है जिसकी घोषणा करते हैं वेद।

4. मानता है हर एक धर्मावलंबी कि ईश्वर एक ही है
और अपने ही धर्म में वह ईश्वर प्रतिपादित भी है
स्पष्ट हुआ इससे कि ईश्वर एक ही है और इस
बात में समवेत होते हैं सब धर्मावलंबी भी।

5. जाति-धर्म की समीक्षा श्रवण करने के बाद किया आग्रह
शिष्यों ने सामान्य धर्मों को जानने का और गुरुदेव ने
बाँटा ऐसे धर्मों को पाँच भेदों में यथा अहिंसा, सत्य
आस्तेय, व्यभिचार की उपेक्षा व शराब वर्जन।

6. इन सारे धर्मों में सर्वाधिक श्रेष्ठ है अहिंसा धर्म
और इसी धर्म के आचरण के द्वारा पाया मोक्ष श्रीबुद्ध
आदि महात्माओं ने और मत है सर्वज्ञ महात्माओं का कि
अहिंसा में स्थित है सारे धर्म और अधर्म स्थित है हिंसा में।

7. सत्य सनातन व्रत है और यह संसार स्थित है सत्य में ही
इस कारण बोलना चाहिए सदा ही सत्य और नहीं बोलना
चाहिए कभी झूठ और सच्चे योगी होते हैं वे जो सत्यनिष्ठ
होकर जीवन बिताते हैं और उनकी वाणी होती है सत्यसिद्ध।

8. अपहरण किये बिना दूसरों की संपत्ति का और बिना सोचे
अपहरण की बात जीना है आस्तेय और बनता है अपहरण
सर्व आपदाओं का कारण और सम्मान नष्ट होता है अपहरण से
और चोरी रूपी विष से मलिन व्यक्ति की होती है निंदा।

9. वासना के साथ अन्य स्त्रियों को देखना, बातें करना,
और उनसे मिलना आदि को कहते हैं व्यभिचार और
व्यभिचारवृत्ति से नाश हो जाता है एक के पद, प्रतिष्ठा धन
अधिकार ही नहीं बल्कि प्राणों का भी असमय में होता है नाश।

10. बुद्धि में भ्रम उत्पन्न करनेवाली चीज़ है शराब जिसे
मानते हैं विद्वान लोग विष तुल्य और ताड़ी अफ़ीम
तंबाकू आदि हैं बुद्धिभ्रंश की चीज़ें इसलिए होती है
गणना इनकी मदिरा के रूप में और ये सब हैं वर्ज्य।

सत्ताईसवाँ सर्ग

शुद्धिपंचक

1. अब बताता हूँ यथा संभव शुद्धिपंचक के विषय में
मनुष्य को आवश्यक है संसार में पाँच प्रकार की शुद्धियाँ-
देहशुद्धि वाक्शुद्धि मनःशुद्धि इंद्रियशुद्धि व गृहशुद्धि
इनके समुचित आचरण से होता है मानव का कल्याण।

2. देहशुद्धि के अन्तर्गत आते हैं रोज़ साफ़ पानी में स्नान
करना आँखें कान दांत नख आदि को साफ़, स्वच्छ
वस्त्र पहनना, शुद्ध श्वास लेना, शुद्ध भोजन करना, शुद्ध
जलपान करना, हाथ पाँव स्वच्छ रखना आदि।

3. वाक्शुद्धि में होता है शुद्धभाषा का प्रयोग और
वाणी हो स्फुट स्पष्ट मधुर एवं आकर्षक और हो
दोषरहित सबका हितकर सत्यनिष्ठ और समानता की
भावना से पूर्ण हो और होगी ऐसी वाणी शुद्ध।

4. मनःशुद्धि के निदान हैं सरलता दया कोमल भाव स्नेह
एकाग्रता, लज्जा जैसे गुण और इंद्रिय शुद्धि को न करना
है अप्रिय बातें और न करें अयोग्यों की स्तुति जो
करता है ऐसा आचरण उसकी हो जाती है इंद्रियशुद्धि।

5. गृहशुद्धि के लिए अपेक्षित है घर व वातावरण को रखना है
स्वच्छ और न करना चाहिए विसर्जन कार्य इर्दगिर्द घर के
और साँझ को सुगंधित वस्तुओं से देना भी चाहिए धुँआ
जो करता है शुद्धि पंचक वे बनते हैं यशस्वी व दीर्घायु।

6. जब कुछ शिष्य हुए आकाँक्षित जानने को गुरुदेव के
विचार सूतक प्रसूति उपचार बाल उपचार और विद्यारंभ के
विषय में तो गुरुदेव ने कहा कि प्रसूतिगृह ऐसी खिड़कियों से
युक्त हो जो हवा और धूप का प्रवेश देने व रोकने में योग्य हों।

7. प्रसव के बाद किसी भी चीज़ को प्रसूतिगृह के भीतर
न करने दें प्रवेश जो जच्चे को कष्टदायक हो और
दाई भी किसी प्रकार के अनिष्ट शब्दों को बकनेवाली
नहीं होनी चाहिए और वह हो समर्थ प्रसूति-उपचार में।

8. प्रसव के ठीक ग्यारह दिन बाद करना है शुद्धि-कार्य और
उसके उपरान्त करना है शुद्धि प्रदान करनेवाले अन्य कार्य
करना है नवजात शिशु का नामकरण पंद्रह दिन बाद या
तीन महीने के भीतर शुभ दिन एवं नक्षत्र देखकर।

9 शिशु का करना चाहिए नामकरण कम अक्षरवाला
और पुकारने में आसान, सार्थक और सुनने को प्रिय भी
और अपने पाँचवें साल के पूर्व ही बच्चे का
विद्यारंभ करना चाहिए एक आत्मज्ञानी गुरु से ।

अट्ठाईसवाँ सर्ग

आश्रम विषयक शंकायें

1. गुरुदेव से सुने शिष्यों ने जीवन-संबन्धी उपदेश और
तदनन्तर प्रकट की वाँछा जानने की आश्रम व्यवस्था की
तो बतलाया गुरुदेव ने कि आश्रम हैं चार ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य
वानप्रस्थ और संन्यास और दूँगा इनका परिचय।

2. इनमें से मुख्य हैं तीन ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य व संन्यास
प्रधानता दी है वेदों ने भी इन तीनों को मुख्य रूप में और
बताऊँगा संक्षेप में इनके सामान्य स्वरूप को और पुरुष को
विद्यारंभ काल से लेकर चौबीस साल तक है ब्रह्मचर्य।

3. किन्तु स्त्री को है ब्रह्मचर्य आश्रम विद्यारंभ काल से
लेकर सोलहवें साल तक और यदि चाहती हो कि
गार्हस्थ आश्रम में प्रवेश करने को तो चाहिए उसे
ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग करना और गार्हस्थ्य में प्रवेश करना।

4. ब्रह्मचर्य आश्रम का काल पुरुष को है चौबीसवें साल तक
और स्त्री को है सोलहवें साल तक और कोई चाहता है

कि गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करना तो छोड़ना चाहिए
उसे ब्रह्मचर्य और सुन लीजिए ब्रह्मचारी के लक्षण।

5. ब्रह्मचारी को होना चाहिए मित निद्रालु, मितभोजी
मितभाषी और मितवस्त्रधारी और सदा दूर रहना चाहिए
जुआ, छल-कपट, झूठ बोलना, परनिंदा, क्रोध, सुस्ती
ईर्ष्या आदि दुराचरणों से जिससे ब्रह्मचर्य हो निष्ठापूर्वक ।

6. प्रिय शिष्यगण! होता है गृहस्थाश्रम सुअवसर मंगलदायक
शुभ कर्मों को करने का और है संतान-लब्धि का भी उसे न
बिताना है होकर इंद्रियों के अधीन और बितावें अपनी पत्नी
के साथ धर्मनिष्ठ जीवन और संपत्ति का विनियोग हो दान को।

7. एक गृहस्थाश्रमी को अपेक्षित है, संसार के
प्राणियों से प्रेम दया और समभाव सदृश सद्‌गुण और
उनको सदा अहिंसा सत्य आस्तेय व्यभिचार की उपेक्षा और
मद्यनिषेध इन पाँच धर्मों को करना है दृढ़ता से।

8. आगे मैं प्रकाश डालूँगा पंचमहायज्ञ पर यानी
ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ व मनुष्ययज्ञ पर
होता है ब्रह्मयज्ञ वेदों का अध्ययन व अध्यापन और
होता है पितृयज्ञ पितृतर्पण श्राद्ध आदि अनुष्ठानों से।

9. पूजा करना देवों की यज्ञादि से है देवयज्ञ और पक्षी एवं
पशुओं को खाना देना है भूतयज्ञ और होता है मनुष्ययज्ञ
अतिथियों वर्णाश्रमियों दुखितों व नौकरों का पूजन और
वे भोगते हैं नारकीय दुख जो न करते पंचमहायज्ञ।

10. चार आश्रमों में सर्वोत्तम है गार्हस्थ्य जिसे निंदनीय
बनानेवाले का जीवन सचमुच इस संसार के लिए
खड़ा करता है बड़ा संकट और गार्हस्थ्य-प्रवेश के
पहले सोचना-समझना है उसके अच्छे-बुरे के विषय में।

11. जब किसी शिष्य ने यह शंका उठायी कि यदि वधू और
वर में एक की मृत्यु हुई अकाल में तो बचे हुए को पुनः
विवाह संभव है या नहीं तो गुरुदेव ने कहा कि अच्छी तरह
सोच-समझकर शादी करे दुबारा तो इसमें गलती नहीं है।

12. जिसकी पत्नी की मृत्यु हुई हो चाहे तो वह कर सकता है
दोबारा शादी किंतु बार-बार शादी करनेवाले का क्षीण होता है
पुण्य और बन जाता है पापी और यह भी जान लें कि प्रेम सदा
एक ही जगह सुस्थिर रहता है, इस वजह करें शादी एक बार ही।

13. एक गृहस्थाश्रमी को अपेक्षित है संसार के सभी
प्राणियों से दया प्रेम समभाव जैसे गुण और
संन्यासी ब्रह्मचारी और अतिथि हैं उसके आतिथ्य के
अधिकारी और घर में आगत उनका हो यथोचित सत्कार।

14. सज्जनों के लिए निकृष्ट कार्य है दहेज का लेन-देन मनमानी
ढंग से और अपनी संतानों को बेचने की तरह है ऐसा
लेन-देन और ध्यान रखें कि गृहस्थाश्रमी को पालन करना चाहिए
सदा सत्य व अहिंसा का एवं पंचमहायज्ञ व शुद्धिपंचक का भी।

15. गृहस्वामिनी हो सद्गुणसंपन्न और हो ईश्वर में श्रद्धा-भक्ति
रखनेवाली भी अन्यथा होगा वासस्थल श्रेष्ठ कुल का भी
दरिद्रता, रोग आदि का वासस्थल जो मंगलकारी
गार्हस्थ्य धर्म का पालन करती है उसे मिलेगी सद्गति।

16. एक शिष्य ने उठायी शंका मृत्युविषयक कि मृतक
के लिए हमें करना है कैसा कर्म सुनकर बताया
गुरुदेव ने कि जब होती है स्त्री बालक युवक और
वृद्ध की मृत्यु तो तुरंत ही करना है दाहकर्म।

17. बंधुजनों को करना है दस दिन तक लाश से संबद्ध
बलिकर्म आदि और ग्यारहवें दिन में हवन, स्नान,पुण्यजल
छिडकना आदि करना है और ग्यारहवें दिन में भी
हवन, स्नान व पुण्यजल छिडकने से शुद्धिकर्म होता है पूर्ण।

18. पुत्र को करना है पिता का दाहसंस्कार और यदि पुत्र
नहीं हो तो दाहसंस्कार पुत्र का पुत्र कर सकता है
और उसके अभाव में मृतक का भाई या भाई का पुत्र और
यदि पुत्र पौत्र व भतीजा नहीं है तो करना है भानजे को।

19. पति और पत्नी आपस में भी कर सकते हैं दाह संस्कार यानी
करना है पति की मृत्यु पर पत्नी व पत्नी की मृत्यु पर पति को
जो मानते हैं मृतक के लिए अनुष्ठित कर्मों को दृढ़तापूर्वक वे करें
विधिवत् कर्म और जो मानते हैं अर्थशून्य वे नहीं करें।

20. अन्य सब को निर्धारित है यह सब विधि और निर्देशानुसार
पुरोहितों के मृतक-संस्कार से संबंधित बातों को करना है
और इसमें सहायता ले सकते हैं कर्मकुशल व्यक्तियों की
और मृतक संस्कार का निर्वहण हो देश और काल के अनुसार। (क्रमशः)

कथा साहित्य में जीवन की विकृतियाँ - मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य के विशेष संदर्भ में

डॉ लेखा पी

श्रीमती मन्नू भंडारी मध्यवर्ग की कामकाजी और शिक्षित महिलाओं के आन्तरिक जीवन के चित्रण के लिए प्रसिद्ध लेखिका है। उनके अधिकांश साहित्य मनोविश्लेषणपरक है। प्रत्येक रचनाकार के अनुसार निजी जीवन दृष्टि का निर्माण होता है और उसे रचनाकार अपनी रचनाओं में प्रक्षेपित करने का प्रयास करता है। जीवन दर्शन में मनोविज्ञान का प्रभाव मन्नूजी की कहानियों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

मानसिक रोगियों को दो भागों में विभक्तकर सकते हैं- मनःस्नायु विकृति वाला और मनोविकृतिवाला। मानसिक-स्नायु संबंधी विकृतियों की गणना मनःस्नायु विकृति में आती है। इससे त्रस्त व्यक्ति मानसिक अस्वस्थता प्रकट करने के साथ आस-पडोस के वातावरण एवं परिस्थिति से ज्ञान रखते हैं। यह विकृति कई प्रकार में देख सकते हैं कि चिंता मनःस्नायु विकृति (Anxiety Neurosis), मनोग्रस्तता बाध्य मनःस्नायु विकृति (Obsessive Compulsive Psycho-neurosis), क्षोभोन्माद (Hysteria), दुर्भीति (Phobia) और मनश्रांति (Neurasthima)।

नाम से ही स्पष्ट है कि इसकी प्रमुख विशेषता चिंता है, और इसका कारण भय है। चिंता भी दो रीतियों में पायी जाती है- सामान्य चिंता और असामान्य चिंता। इन दो चिंताओं का भी उदाहरण मन्नू जी की कहानियों में विद्यमान है। 'गीत का चुंबन', 'अभिनेता', 'दरार भरने की दरार', 'ईसा के घर इनसान' आदि कहानियों के पात्र चिंता मनः स्नायु विकृति से पीडित है। 'गीत का चुंबन' का पात्र कुंन्नी (कनिका) अपने निखिल के कई दिनों तक घर न आने के कारण चिंतित होती दिखाई देती है। "और जो हुआ उसे भूल पाने की चेष्टा करेगी। पर निखिल आया ही नहीं। ज्यों-का-त्यों समय बीतता जाता था उसकी बेचैनी बढ़ती जाती थी। पर.... पर जब दूसरे दिन भी निखिल नहीं आया तो व्याकुल हो उठी।"[1] अभिनेता कहानी में दिलीप के न आने के कारण रंजना भी चिंतित है। "रंजना को अपनी अभिनय की कला और सुन्दरता पर बड़ा गुमान था। उसका वह गुमान दिलीप की अपेक्षा से चूर-चूर हुआ"[2] दिलीप की उपेक्षा से रंजना चिंताग्रस्त हो जाती है।

'दरार भरने की दरार' में नायिका नन्दिता भी चिंतित है। उसकी सहेली एवं दीदी श्रुति तथा विभु के अलग हो जाने के विचार से नन्दिता चिंतित है। अनीता राजूरकर का कथन देखिए- "श्रुति अपने पति विभु से अनबन रखती है। यह उससे जुदा होना चाहती है कि हमारा कभी मेल ही नहीं था.... श्रुति दी के आँसुओं ने नंदी को एकाएक बड़ा बना दिया। वह अपने को महत्वपूर्ण समझने लगी। उनका अहं अनजाने तुष्ट हुआ। इसीलिए वह जिम्मेदारी का एहसास महसूस करने लगी।"[3] अपनी सहेली के कारण यहाँ नन्दिता चिंताग्रस्त हो गयी है। गीत का चुंबन की कुन्नी की, 'अभिनेता' कहानी की रंजना की और 'दरार भरने की दरार' कहानी की नन्दिता की चिंताएँ सामान्य चिंता है। लेकिन जो बिना किसी कारण से उत्पन्न चिंता है जो वह असामान्य चिंता है और इसका संबंध भविष्य से है। असामान्य चिंतावाला एक पात्र है 'ईसा के घर इंसान' के एंजिला, 'तीसरा आदमी' कहानी का नायक सतीश, 'सयानी बुआ' कहानी का बुआ आदि। मन्नू जी की 'ईसा के घर इंसान' की एंजिला उन्मुक्त व्यवहार से दुखी होने के कारण मदर उसे फादर के पास भेज देती है। "सुनते हैं एंजिला काबू में नहीं आ रही है। उसका पागलपन वैसे ही जारी है। हम लोगों को भी उधर जाने की इजाज़त नहीं है।"[4] फादर के दुर्व्यवहार एंजिला को चिंतामनःस्नायु विकृति का शिकार बना देते है।

'तीसरे आदमी' का सतीश अपनी हीनताग्रंथि एवं आशंका के कारण बहुत चिंतित है। उनके मन में सदा यह चिंता उसका मथन करती आयी कि कोई बहुत बडी दुर्घटना होनेवाली है। असामान्य चिंता व्यक्ति एवं मानस को, समूचे व्यक्तित्व को भी असामान्य बना देती है। 'सयानी बुआ' कहानी में बुआ चिंतित है। अपनी असामान्य चिंता के कारण तडपती रहती है। बुआ की बेटी बीमार हुई तो उसके पति बेटी को लेकर पहाड़ पर चले गये। कई दिनों तक पति की चिट्ठी न आने पर बुआजी चिंतित हो जाती है और उसके मन में चिंता होती रही और दुःस्वप्न जारी रहे। "करीब एक महीने के बाद एक दिन भाई साहब का पत्र नहीं आया....... बुआजी बडी चिंतित हो उठी..... घर की कसी-कसाई व्यवस्था कुछ शिथिल-सी मालूम होने लगी....... अब तो बुआजी की चिंता का पार नहीं रहा।..... सारी रात दुःस्वप्न देखती रहीं और रोती रहीं। मानो उनका वर्षों से जमा हुआ नारीत्व पिघल पडा या और अपने पूरे वेग के साथ बह रहा था। वह बार-बार कहती कि ...... भाई साहब अकेले चले आ रहे हैं..... अन्नू साथ नहीं है और उनकी आँखें भी लाल है और वह फूट-फूटकर रो पड़ती।"[5] इस प्रकार की प्रक्रिया असामान्य चिंता के फलस्वरूप है।

परपीडन एवं स्वपीडन रति : परपीडन में दूसरों को पीडा पहुँचाकर लैंगिक आनन्द प्राप्त किया जाता है तो स्वपीडन में अपने को कष्ट एवं दुख देकर लैंगिक आनन्द प्राप्त किया जाता है। 'आपका बंटी' में अपनी माँ को दुख पहुँचाकर उसे दुखी देखकर सन्तुष्ट हो जाता है। कभी - कभी बंटी अपनी क्रियाओं से ममी को ही नहीं, बल्कि स्वयं भी आन्तरिक व्यथा से गुजरता है। शकुन और जोशी के घनिष्ट संबंध देखकर वह खिलौने फेंकने शुरू करते हैं। उसे मन हुआ कि पेड से कूद पड़े। अपना हाथ पाँव तोड लें आदि।

मनोग्रस्तता बाध्य मनः स्नायु विकृति
(Obsessive Compulsive Psychoneurosis)

मनोग्रस्तता से ग्रस्त व्यक्तिके मन में कई प्रकार के विचार एवं चिंताएँ बार-बार आते हैं और वह संदेहशील हो जाता है। एक विचार या चिंता से मुक्तिमिलते ही दूसरा विचार मन में आया करता है। इसके लिए उदाहरण है तीसरा आदमी कहानी का सतीश। सतीश ऐसा एक पात्र है, जिसके मन में विचार और संदेह बार-बार आकर उसे अस्वस्थ एवं तनावग्रस्त बना देता है।

क्षोभोन्माद (Hysteria)

जीवन की जिम्मेदारियों और समस्याओं का सामना करने में कभी-कभी व्यक्तिअसफल होकर निराशा का शिकार बन जाता है और उस समय प्रकट करनेवाली अस्वाभाविक प्रतिक्रिया है क्षोभोन्माद। क्षोभोन्माद की प्रक्रिया को दो स्थितियों में प्रकट करते हैं कि-एक काम- प्रेरक की अपूर्ति के कारण और दूसरा स्वकाम्य नारीत्व और (अवैध) मातृत्व की वंचना के कारण। मन्नू जी की 'क्षय' कहानी का पात्र कुंती क्षोभोन्माद से ग्रस्त है। इससे ग्रस्त व्यक्ति में किसी विशेष वस्तु या परिस्थिति के प्रति आरोपित चिंता की अभिव्यक्ति होती है। कुंती की अवस्था इस प्रकार है कि "उसे बडे ज़ोर की खाँसी आई - कि उसका मुँह लाल हो गया और आँखों से पानी निकलने लगा। खो खो खो.... यहाँ तक ..खाँसी बन्द हुई पर फिर भी उसके कानों में जैसे वही आवाज़ गूँजती रही.... खो....खो....खो....एकाएक कुंती को लगा कि उसकी यह खाँसी यह खोखली-खोखली आवाज़ पापा की खाँसी से कितनी मिलती है। .....कहीं उसके चेहरे पर भी वैसी ही मुर्दनी तो नहीं जो उसके पापा के चेहरे पर है।"[6] यहाँ कुंती चिंता-क्षोभोन्माद से ग्रस्त दिखाई पड़ती है।

दुर्भीति (Phobia): दुर्भीति-ग्रस्त व्यक्ति की विशेषता है कि भय की तीव्रता और वस्तु के वास्तविकता संकट में कोई अनुपात नहीं होता। चश्मे कहानी में निर्मल दुर्भीति ग्रस्त व्यक्तिके रूप में विद्यमान है।" 'चश्मे' कहानी में वर्तमान और अतीत की घटनाओं के माध्यम से ऐसे व्यक्ति की कथा कही गई है, जिसने अपनी बीमार प्रेमिका को त्यागकर अन्यत्र विवाह कर लिया है। वर्तमान में वह अपने अतीत को स्मरण कर जिस प्रकार व्यथित व आंदोलित हो उठता है। इसका सरस और कुतूहलपूर्ण चित्रण इस कहानी में हुआ है।"[7] अपनी मंगेतर शैल के टी.बी. से पीडित हो जाने पर निर्मल भयग्रस्त हो जाता है कि उसे भी कहीं बीमारी न लग जाय। इसी भय के कारण वह सैनिटोरियम के फाटक पर रुक गया।

मनःश्रांति (Neurasthima): मन्नू जी की बाहों का घेरा कहानी की नायिका कम्मो मनःश्रांति रोग से ग्रस्त नारी है। कम्मो यौन दृष्टि से अतृप्त नारी है। बचपन से ही कम्मों दूसरों के प्यार-दुलार के लिए तडपती थी। विवाहिता होने के बाद भी, अपने पति की व्यस्तता के कारण उसे कोई शारीरिक सुख नहीं मिलता। कामभावना से अतृप्त कम्मो को नींद भी नहीं आती। "तरल-सरस भावना- तृप्ति से तृषित कम्मो उसकी यथोचित संपूर्ति के अभाव में अकेलेपन की यंत्रणाओं को झेलती हुई टूट जाती है। उसका अकेलापन किसी की बाहों में जकड़कर अपनी मुक्तिके लिए छटपटाती है पर मुक्ति के अभाव में वह अधिक गहरा होकर कम्मो में अनेक विसंगतियों और विकारों को जन्म देता है।' कम्मो की हालत एवं बीमारी काम-अतृप्ति से उत्पन्न मनःश्रांति रोग है।"[8]

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मन्नू जी ने मानव मन में पलनेवाली अहंभावना विकास को मनोविश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत किया है। उन्होंने अधिकांश कहानियों को मनोविश्लेषित किया है। जैसे 'तीसरा आदमी', 'बाहों का घेरा', 'ऊँचाई', 'यही सच है', 'कील और कसक', 'घुटन' आदि। 'स्त्री सुबोधिनी', 'एखाने आकाश नाई' आदि कहानियों में जीवन की विकृतियाँ विद्यमान हैं।

संदर्भसूची

1. मन्नू भण्डारीः गीत का चुंबन, मैं हार गई, पृ.33
2. प्रो. उमा केवलराम मन्नू भण्डारी की कहानियों में आधुनिकताबोध, पृ. 106-107
3. अनीता राजूरकर :कथाकार मन्नू भण्डारी, पृ.61
4. मन्नू भण्डारी ईसा के घर इनसान, मैं हार गई, पृ.22
5. मन्नू भण्डारी - सयानी बुआ, मैं हार गई, पृ.76-77
6. मन्नू भण्डारी; क्षय, यही सच है, पृ.28
7. प्रो. किशोर गिरड्कर, मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य, पृ.12
8. डॉ. माधवी जाधव मन्नू भण्डारी के साहित्य में चित्रित समस्याएँ, पृ.53

असोसियेट प्रोफसर

पष़शिराजा एन एस एस कॉलेज, मट्टन्नूर, कण्णूर, केरल

वैवाहिक संबंधों का वैविध्यपूर्ण चित्रण : साठोत्तर नाटक

डॉ अनुराधा गोस्वामी

शोध सारांश - नाटक साहित्य की इतनी सशक्त विधा है कि उससे साहित्य की सारी विधाओं को समझा जा सकता है। स्वतंत्रता पूर्व से ही हिन्दी नाटकों की एक समृद्ध परंपरा मिलती है, स्वतंत्रता के पश्चात अर्थात् साठोत्तर काल के दौरान वैवाहिक संबंधों को लेकर जिन हिन्दी नाटकों की रचना की गई उन्होंने न केवल साहित्य में श्रेष्ठ योगदान दिया अपितु पूर्वाग्रह से रहित वैवाहिक संबंधों का सामाजिक धरातल पर वैविध्यपूर्ण प्रस्तुतिकरण किया है। इन नाटकों का विषय मात्र मनोरंजन परक नहीं है इनमें गहरी समझ, गहरे यथार्थ को मात्र बाह्यपक्ष के आधार पर प्रस्तुत नहीं किया गया है अपितु पात्रों के आंतरिक पक्ष को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया गया है। "सामयिक-युग और उसकी विसंगतियों में घुटते मनुष्य के मानसिक विघटन की अभिव्यक्ति इस काल के नाटककार का मुख्य लक्ष्य है। इसके लिए कुछ नाटककारों ने ऐतिहासिक और पौराणिक संदर्भों को अपना माध्यम बनाया है और कुछ ने वर्तमान युग की ज्वलन्त समस्याओं से प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है।"[1] साठोत्तर नाटकों में नाटककार वैवाहिक संबंधों की सच्चाई, जटिलता को सफलता पूर्वक उद्घाटित करता है।

बीज शब्द - वैवाहिक संबंध,साठोत्तर हिन्दी नाटक, नपुंसकता, यौनतृप्ति या संतुष्टि, दाम्पत्य जीवन, पतिव्रत धर्म, सुखी दाम्पत्य जीवन की कसौटी

संसार में स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर तमाम चर्चाओं ने जन्म लिया है परंतु अगर इन चर्चाओं से इतर देखा जाए तो दिखता है कि स्त्री-पुरुष का संबंध प्राकृतिक देन है। विशेष रूप से भारत में स्त्री-पुरुष संबंधों की अपनी पवित्र परंपरा रही है जिसमें स्त्री-पुरुष वैवाहिक संबंध में आकर एक सुव्यवस्थित व सुदृढ़ समाज का निर्माण करते हैं । आज आधुनिकता के इस दौर में जहाँ केवल हम मात्र आधुनिकता की झूठी नकल करते हुए नजर आते हैं तथा खोखले आधुनिक होने का अभिनय करते है। जहाँ पहले स्त्री-पुरुष के संबंध पारंपरिक मूल्यों पर टिके हुए थे, इस आधुनिकता के अभिनय में उन्हीं पारंपरिक मूल्यों को हम भूलते जा रहे हैं, जिसका परिणाम यह हुआ कि पति-पत्नी के आपसी संबंधों में शत्रुतापूर्ण व्यवहार एक आम समस्या होती जा रही है। यह होना स्वभाविक है क्योंकि जैसे- जैसे स्त्री शिक्षित होगी वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होगी और वह अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णयों से लेकर जीवनसाथी के चुनाव तक में स्वतंत्रता तथा अपने अधिकारों का प्रयोग करेगी।

भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष को लेकर मुख्यतः दो प्रकार के संबंध प्रचलित हैं- वैवाहिक सम्बन्ध तथा विवाहेतर सम्बन्ध। आधुनिक समाज में "विवाह की सीमा के बाहर यौन-तुष्टि या विवाह से पूर्व यौन-सम्बन्ध अब पहले की भांति चौंकाते नहीं हैं। फलतः पर-स्त्री गमन, उन्मुक्त प्रेम तथा प्रयोगात्मक विवाह जैसी अनेक संकल्पनाएँ जन्म ले रही हैं। इन अभिवृत्तियों के मूल में आज की परिवर्तनशील परिस्थितियाँ और यौन-सम्बन्धों तथा विवाह के संदर्भ में बदलते जीवन मूल्यों को लक्षित किया जा सकता है।"[2] इस विघटित होते परिवर्तन के कारण ही पारिवारिक तथा सामाजिक बंधनों के मध्य व्यक्ति कुंठित होता जाता है, जिसका परिणाम वैवाहिक संबंधों में विकृतियाँ जन्म लेती हैं वैवाहिक सबंधों में टकराव किन बिन्दुओं पर होता है और समर्पण के चुकने की वजह क्या होती है? इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए।

आधुनिकता के इस दौर में अहं का टकराव वैवाहिक संबंधों के टूटने/विघटन का महत्वपूर्ण कारण है। दैहिक संतुष्टि के उपरांत भी संबंधों में एक ऊब सी होने लगती है, जिसके उतरोत्तर कई परिणाम सामने आते है। विवाह-विच्छेद उनमें से एक परिणाम है हालांकि भारतीय सभ्यता में पाश्चात्य सभ्यता की भांति विवाह-विच्छेद का प्रावधान नहीं है लेकिन भारतीय साठोत्तर नाटककारों ने समाज की यथार्थता को समझते हुए, विवाह-विच्छेद अगर अवश्यंभावी हो तो हो जाना स्वीकारा है। समाज में दाम्पत्य जीवन के विघटन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। "एक ओर परस्पर कुण्ठा और अविश्वास इसके वर्चस्व को समाप्त कर रहे हैं, तो दूसरी ओर स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता और तलाक की दुनिया इसके लिए चुनौतियाँ बन गई हैं।"[3] इन्हीं परिस्थितियों में एक नवीन दाम्पत्य चेतना का भी विकास हो रहा है जो भविष्य के लिए एक प्रकाश पुंज का निर्माण करती है।

साठोत्तर हिन्दी नाटकों में वैवाहिक संबंधों की परंपराओं, मान्यताओं के चित्रों को स्पष्ट चुनौती मिलती दिखाई देती हैं। वैवाहिक संबंध की आस्थाओं जैसे पातिव्रत्य, सतीत्व जैसी भावनाओं तथा पति परमेश्वर जैसी मान्यताएँ अब स्वीकार्य नहीं है इसलिए "पति परमेश्वर के रूप में की गई प्रतिष्ठा का चमचमाता फ्रेम काला पड़ने लगा है, और रिश्तों में दरारें आने लगी हैं।"[4] वैवाहिक सम्बन्ध की सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी है पति-पत्नी सम्बन्ध। जो विश्वव्यापी, वैधानिक

और सामाजिक दृष्टि से प्रामाणिक है। पारस्परिक प्रेम और पूर्ण सामंजस्य का दूसरा नाम ही विवाह है। 'विवाह' शब्द का प्रयोग सामान्यतः "दाम्पत्य-सूत्र में आबद्ध होने की एक प्रथा"[5] के अर्थ के रूप में किया जाता है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार "विवाह एक विधिमान्य-मिलन है, जिसके द्वारा स्त्री-पुरुष परस्पर पति-पत्नी बन जाते हैं।"[6] समाज निर्माण की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता को ही विवाह कहा गया है क्योंकि विवाह के उपरांत ही परिवार का सृजन होता है और परिवार से ही समाज का निर्माण संभव है।

हिन्दी साठोत्तर नाटकों में वैवाहिक संबंधों में विघटन एवं अलगाव को बड़े स्तर पर स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रायः पति-पत्नी सम्बन्धों के बारे में यह माना जाता रहा है, कि वे एक-दूसरे के जीवन में प्रवेश करके अपने पारस्परिक जीवन को अपने विचार एवम् कार्य-विधि द्वारा दैदीप्यमान बना देते हैं। भारतीय समाज पर पश्चिमी सभ्यता एवम् संस्कृति के लगातार प्रभाव के कारण ऐसे दूरगामी परिणाम निकले हैं, जिससे दाम्पत्य जीवन खण्डित होने लगा है। इस विखण्डन तथा अतृप्ति-भावना से प्रभावित होकर पति और पत्नी एक-दूसरे के पूरक न होकर परम विरोधी एवम् शत्रु बन रहे हैं, इसका प्रमुख कारण है दोनों एक-दूसरे से अनेक अपेक्षाएँ रखते हैं जबकि उनकी निजी जिंदगी उतनी आपेक्षाओं की अनुमति नहीं देती है। मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' नाटक में सावित्री और महेन्द्रनाथ एक ऐसे पति-पत्नी हैं, जो सदैव एक-दूसरे से असन्तुष्ट रहते हैं। उक्त संवाद, सावित्री और महेन्द्रनाथ के बीच का तनाव स्पष्ट करता है कि आधुनिक पति-पत्नी एक दूसरे से कितनी अपेक्षाएँ रखते हैं। महेन्द्रनाथ कहता है कि तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो नहीं है।"[7] इसलिए जब नाटक में सावित्री को महेन्द्रनाथ से वह सहयोग नहीं मिल पाता तो वह उससे पूरी तरह विपरीत बात करती है। "सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो..."[8] वह बातों ही बातों में यह तक कह देती है कि अब हमारा सम्बध कुछ ही समय का शेष रह गया है जो कभी भी टूट सकता है चूँकि अब वह पारिवारिक दायित्वों को अकेले नहीं ढो सकती अतः स्पष्ट है, कि आधुनिक पत्नी एक निठल्ले पति को गृहस्वामी स्वीकार नहीं करती।

जयदेव तनेजा स्त्री-पुरुष के ऐसे ही सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "द्वंद और तनाव में निरन्तर एक-दूसरे से टकराते हुए जीते जाने की प्रक्रिया ही आधुनिक स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की वास्तविकता है।"[9] सावित्री और महेन्द्रनाथ का वैवाहिक जीवन पूरी तरह शंका ग्रस्त है। उनके आपसी अविश्वास, तनाव को इस संवाद से देखा जा सकता है "आ गई दफ्तर से? लगता है, आज बस जल्दी मिल गई।"[10] इस आपसी सामंजस्य की शून्यता के कारण वे सम्पूर्ण नाटक में एक दूसरे को इस स्थिति के लिए आरोपित करते नज़र आते है। साठोत्तर नाटकों में पारिवारिक विघटन, असंतोष और सम्बन्धों में स्नेह हीनता की व्यंजना के साथ प्रेम की भावनात्मक सत्ता को उपभोग की वस्तु में परिवर्तित होने की तीखी अभिव्यंजना की गई है। आज घर का मिथ टूट रहा है। मानसिक शान्ति के लिए स्त्री-पुरुष भटक रहे हैं।

साठोत्तर हिन्दी नाटकों में पत्नी शिक्षित है इसलिए वे जीविकोपार्जन के लिए पति विशेष पर निर्भर नहीं है। वैवाहिक बंधन में जाने के उपरांत पति के रूप में वह जिस विशेष पुरुष को स्वीकारती है,वह बाद में वही परंपरागत पुरुष निकलता है। मन्नु भण्डारी कृत नाटक 'बिना दीवारों का घर' का मुख्य पात्र अजीत है, जो पूर्ण रूप से परंपरागत पुरुष मानसिकता का व्यक्तिहै, वह अपनी कामकाजी पत्नी जो पेशे से शिक्षक है उसको वह पारिवारिक घरेलू कार्यों के लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार स्वीकारता है उसकी यही मनोग्रंथि उसके जीवन की त्रासदी है जब वह कामकाज से घर आता है और अपने परंपरागत पुरुषत्व के अनुरूप घर को तथा शोभा को नहीं पाता है तो तनावग्रस्त हो उठता है-""मैं चाहता हूँ, मेरा घर हो, कोई ऑफिस या होटल नहीं। थका-हारा मैं ऑफिस से लौटकर आऊँ तो मेरी भी इच्छा होती है, कि मेरी पत्नी... पर यहाँ तो जब भी आओ यही सुनने को मिलता है, कभी वह मीटिंग में गई है या कि इतने जरूरी काम में है, कि उन्हें बात करने तक की फुर्सत नहीं है।"[11] इस प्रकार की पुरुषत्व-मनोग्रन्थि के कारण अजित के अहं को एक चोट सी पहुँचती है इससे वह विचलित होता हैं, इसी विचलन में वह शोभा को अपशब्द भी कहता है। आर्थिक रूप से स्त्री को स्वतंत्र होने में खूब संघर्ष करना पड़ा है जिससे पुरुषों पर उसकी निर्भरता खत्म हुई। शोभा किसी अन्य कॉलेज प्रिन्सिपल के पद के लिए आवेदन करने के लिए एक बार अजित से पूछती है तो उसका जबाब "मुझसे क्या पूछती हो जो तुम्हारी समझ में आये करो, न हो जयन्त से पूछ लो।"[12] स्पष्ट है कि अजित को उसकी तरक्की तथा उसके पुरुष मित्रों से संबंध पर आपत्ति है। वह उसके चरित्र पर भी लांछन लगाता है ओर दिन-प्रतिदिन शक करता जाता है।

वैवाहिक बंधन में स्त्री-पुरुष का मानसिक तथा आत्मिक रूप से जुड़ा होना जितना आवश्यक है उतना शारीरिक रूप से भी जुड़ा होना आवश्यक हैं। साठोत्तर नाटककरों का ध्यान वैवाहिक जीवन की इस समस्या की ओर भी गया है, सुरेन्द्र वर्मा कृत् 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में नाटक की केन्द्रीय समस्या विवाहोपरान्त यौन जीवन की है। इसमें पति नपुंसक है, जिसके कारण पत्नी

यौन-सुख एवम् मातृत्व सुख दोनों से ही वंचित है। शीलवती एक वैभवशाली स्त्री है विवाह के पाँच वर्ष बाद भी वह कुँवारी है। उसका पति नपुंसक है। उसको दैहिक सुख प्रतोष नामक पुरुष से प्राप्त होता है, जिसके उपरांत उसके मन में छिपी एक अधिकारों के प्रति सजग स्त्री विद्रोह कर देती है और नपुंसकता के साथ जीवन को नियति मान बैठी शीलवती को अब अपने दैहिक सुखों का दमन बिल्कुल स्वीकार नहीं है। वह ओक्काक का सामना करते हुए यह तक कह देती है कि "मैं एक ब्याहता स्त्री हूँ, मेरे जीवन का कामशास्त्र से क्या सामंजस्य है? जिसने पाँच वर्षों तक यह नहीं जाना कि पुरुष के स्पर्श में वह कौन सा सम्मोहन है।"[13] उसका विद्रोह हर उस सामान्य स्त्री का विद्रोह है जो इस प्रकार के यौन सुख से वंचित है इसलिए शीलावती स्पष्ट शब्दों में ओक्काक से कहती है कि "तुम कितने परमार्थी हो, जो बिना सामर्थ्य के ब्याह के जैसा जघन्य पाप कर सकते हो?... यानी मैं तुम्हारे लिए केवल जड़ी-बूटी थी? कितनी युवतियाँ हैं, जो ब्याह से पहले ही कुमारी नहीं रहतीं... और मैं ब्याहता होकर भी ब्रह्नचारिणी थी...लेकिन कब तक ? मैं एक मामूली स्त्री हूँ। जब शरीर के माध्यम से जीती हूँ, तो शरीर की माँगों को कैसे नकार सकती हूँ?"[14] वैवाहिक संबंधों की रीढ़ की हड्डी को उनके मध्य काम संबंधों की संतुष्टि को माना जा सकता है। ओक्काक और शीलवती के संबंध में असंतोष का कारण उनकी यही यौन असंतुष्टि है। साठोत्तर हिन्दी नाटककार के मन में 'प्रेम' और 'शरीर' को लेकर कोई ग्रन्थि या पूर्वाग्रह नहीं है। प्रेम के साथ अगर शरीर आता है तो उसे सहज-स्वाभाविक ढंग से स्वीकार किया गया है।

गोविन्द चातक कृत 'अपने-अपने खूँटे' के पति-पत्नी के मध्य कोई प्रेममय सम्बन्ध नहीं है, फिर भी वे एक-दूसरे के साथ रहने के लिए विवश हैं। "अविनाश और वर्षा के दाम्पत्य जीवन की भी यही नियति है।" घटनाओं से उत्पन्न मनःस्थितियाँ व्यक्तिको विशेष रूप से उद्वेलित करती हैं। प्रेम का एक रूप अधिकारमय और दम घोंटने वाला है, तो दूसरा रूप भौतिक जीवन को जानने-समझने वाला तथा व्यावहारिक दृष्टि से संयत है और पुरुष के समक्ष सिर झुकाने वाला नहीं है।"[15] विवाहोपरान्त अविनाश अपने परिवार के प्रति निष्ठावान होने का बार-बार प्रमाण देता है परन्तु वर्षा का अतीत उस पर हावी है। विवाह-पूर्व वह कई पुरुषों के सम्पर्क में रह चुकी है। इन्हीं सम्बन्धों की परछाई को वह अविनाश के वर्तमान के साथ जोड़ कर देखती है। शक के खूंटे से बंधी वर्षा अपने पति के साथ सामान्य धर्म का भी निर्वाह नहीं कर पाती है। पग-पग पर उसकी शंकालु मनोव्यथा अभिव्यक्त होती है। वर्षा अपने पति अविनाश से बेहद नाराज है। उसकी दृष्टि में अविनाश स्वयं तो अपनी शारीरिक और मानसिक जरूरतें घर से बाहर जाकर पूरी कर लेता है किन्तु उसकी पत्नी वर्षा एक गृहिणी है तथा उसके पास मनोरंजन का कोई साधन नहीं और वह घर में खूंटे से बँधी गाय के समान लाचार है। अविनाश के बैग में एक लेडिज छाता निकलता है। जिसे देख वर्षा का शक और गुस्सा दोनों हीं बढ़ जाते है तथा वह अविनाश पर शब्दों के प्रहार करती है। "कल तुम छाता लेकर आए थे, किसका था?"[16] अविनाश और वर्षा का दाम्पत्य जीवन एक-दूसरे की गलतियाँ गिनाने, ताना मारने और शक करने के कारण तनावग्रस्त है। प्राय? वैवाहिक कलह का कारण किसी तीसरे का होना भी माना जाता है। मनोवैज्ञानिक के अनुसार दाम्पत्य सम्बन्धों की मधुरता किसी तीसरे के आने के नाम भर से कड़वाहट में बदल जाती है। यही वजह है कि वर्षा और अविनाश दोनों का गृहस्थ जीवन बिखरने लगता है।

मुद्राराक्षस द्वरा लिखित 'तिलचिट्टा' भी इसी तरह का नाटक है जिसमें देव और केशी के माध्यम से नाटककार ने वैवाहिक संबंधों में नपुंसकता के परिणामों को प्रकट किया है जो दोनों के वैवाहिक संबंध में, उनके आपसी प्रेम में एक गहरा फासला कर देता है। केशी कहती है कि "तुम ठीक कह रहे थे, देव। एक फासला तो है, लेकिन वह फासला किस तरफ से देख रहे हो? लेकिन सवाल सिर्फ इतना है, कि फासला किस तरफ से?"[17] केशी अपने यौन सुख की पूर्ति किसी अन्य संबंध से कर लेती है और उसको संतान सुख की प्राप्ति होती है। जिसका सच केशी स्वीकार कर लेती है। इसको सुनकर देव आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से "मानस के कुण्ठाग्रस्त कक्ष से उठने वाली प्रतिध्वनियों को एक निष्क्रिय नाटकीय स्थिति से जोड़कर मुद्राराक्षस ने इस सशक्तनाटक की रचना की है।"[18]

डॉ. लक्ष्मीनारायण कृत 'कर्फ्यू' नाटक में दाम्पत्य जीवन के मिथ्या एवं अधूरेपन को प्रदर्शित किया है। प्रस्तुत नाटक में गौतम और कविता ने आदर्श पति-पत्नी का खोखला चोला ओढ़ लिया है। वे समाज की दृष्टि में सभ्य बने रहना चाहते हैं चाहे भीतर ही भीतर उनमें कितनी ही बुराईयाँ दबी हो। इस नाटक में नाटककार ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की निर्मम चीर-फाड़ के साथ वर्तमान युग के परिवेश में व्याप्त विसंगति और अव्यवस्था में पिसते और कराहते हुए मनुष्य की चीख को पकड़ने का प्रयास किया है। मनुष्य के आपसी सम्बन्ध कुछ अजीब सीमाओं के भीतर जन्म लेते हैं और उसी सीमा में रहकर खत्म हो जाते हैं।

आधुनिक युग में वैवाहिक संबंध इतने जटिल हो गए है कि उनकी जटिलता उनके आपसी अहं के कारण जन्म लेती है, जिसके फलस्वरूप परिवार दिन-प्रतिदिन बिखरते चले जा रहे हैं। साठोत्तर नाटकों में तनाव, आपसी मतभेद व विघटन आदि का बहुतायत से चित्रण हुआ है। परितोष गार्गी

कृत नाटक 'छलावा' में नाटककार लालू (परंपरावादी पुरुष) और अंजली जो पति-पत्नी हैं, अभी विवाह हुए कुछ समय हुआ है परंतु उनका संबंध बिखरता जा रहा है जिसका प्रमुख कारण है लालू का विवाहपूर्व (बेला के साथ) के संबंधों का पता होना। जिसके कारण वह हमेशा से लालू से एक अलगाव सा महसूस करती है, जैसे वह एक अजनबी हो। "मैं सब कुछ भूल सकती थी, पर यह बात कभी नहीं भूल सकती, कि तुम वह हो, जिसने तीन साल तक बेला से घुल मिलकर प्यार किया...।"[20] धन के लालच में आकर लालू ने एक साथ कई जीवन बरबाद किए जिसमें सबसे ज्यादा कीमत बेला को अपनी जान गँवा कर पूरी करनी पड़ी। दूसरी अंजली ने एक सामान्य स्त्री की तरह विवाह के जो सपने संजोये थे वे टूट कर बिखर गये। इसके पश्चात् भी लालू स्वयं को निर्दोष मानता है।

साठोत्तर नाटकों में कुछ नाटककरों ने वैवाहिक संबंधों के 'सुखद दाम्पत्य' के चित्रों को भी बड़ी सहजता से उकेरा है। शंकर शेष कृत 'घरौंदा' नाटक में मोदी और छाया पति-पत्नी हैं, छाया मोदी के ऑफिस में काम करने वाली एक गरीब स्टैनो है, किन्तु मोदी उसकी ओर आकर्षित होता है तथा उस से विवाह कर लेता है। मोदी एक बीमार पुरुष है, किन्तु छाया के प्रेम और देख-रेख से वह जल्दी ही अच्छा होने लगता है। एक दिन जब उसे यह पता चलता है कि वह पिता बनने वाला है, तो वह छाया से अपनी अतुल्य खुशी बाँटता है "तो मैं बनने वाला हूँ। अरे, बाप रे बाप! यानी जूनियर मोदी। (भावुक होकर) सोच भी नहीं सकता था, कि इतना अच्छा दिन मेरे जीवन में कभी आएगा। कहाँ तो मृत्यु के इतने करीब पहुँच गया था और कहाँ तुमने मुझे जीवन से इतने गहरे जोड़ दिया।..."[21] स्पष्ट है कि मोदी छाया के प्रति पूर्ण रूप से आसक्त है। उसका जीवन छाया के आगमन से पुनः खिल उठा है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि साठोत्तर हिन्दी नाटकों में वैवाहिक संबंधों में चित्रित प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिवर्तनों की आहट को नाटककारों ने स्पष्ट रूप से पहचाना है और उसे अभिव्यक्त किया है। भौतिक सुख-सुविधाओं की बढ़ती लालसा ने जहाँ व्यक्ति को निरन्तर दौड़ की ओर प्रवृत्त किया, वहीं परम्परागत मूल्यबोध में भी लहरें उत्पन्न कर दीं, जिससे दाम्पत्य सम्बन्धी मूल्यबोध भी अछूता नहीं रहा। यही कारण है कि पति अपनी आर्थिक प्रगति में पत्नी को साधन बनाता है तथा पत्नी द्वारा बॉस एवं अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाने में कोई हिचक महसूस न करना इसी का उदाहरण है। साठोत्तर-काल में उभरते मध्यवर्ग ने स्त्री को शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलम्बन के माध्यम से एक नई अस्मिता से परिचित करवाया। इस बोध से युक्त स्त्री अपने स्वत्व को, अपनी शारीरिक एवम् मानसिक आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को परिवार में अस्मिताहीन होकर कुचल देने को तैयार नहीं थी। उसकी यह जिद और पतियों की पुरुषवादी मानसिकता से प्रारंभ दाम्पत्य सम्बन्धों में जो विघटन आना प्रारम्भ हुआ, उसका चित्रण साठोत्तर-काल के अनेक नाटकों में हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि साठोत्तर नाटक अपने समय के वैवाहिक सम्बन्धों में आने वाले परिवर्तनों को सफलतापूर्वक व्यक्त करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. रीता कुमार : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, पृ. 66.
2. लक्ष्मीराय : आधुनिक हिंदी नाटक चरित्र सृष्टि के आयाम, पृ. 432.
3. रावत एवं खण्डेलवाल : हिंदी कहानी, फिलहाल, पृ. 105-106.
4. कुसुम अंसल : हिंदी उपन्यासों में महानगर, पृ. 100.
5. कालिका प्रसाद (स.) : बृहत हिंदी कोश, पृ. 1223.
6. Oxford Advanced Learners Dictionary of Current English, p. 763.
7. मोहन राकेश : आधे-अधूरे, पृ. 28.
8. मोहन राकेश : आधे-अधूरे, पृ. 28.
9. जयदेव तनेजाः लहरों के राजहंस : विविध आयाम, पृ. 81.
10. मोहन राकेश : आधे-अधूरे, पृ. 14.
11. मन्नू भण्डारी : बिना दीवारों के घर, पृ. 95.
12. मन्नू भण्डारी : बिना दीवारों के घर पृ. 42.
13. सुरेन्द्र वर्मा : सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृ. 27-28.
14. सुरेन्द्र वर्मा : सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृ. 27.28.
15. गोविन्द चातक : अपने - अपने खूंटे, पृ. 28.
16. गोविन्द चातक : अपने - अपने खूंटे, पृ. 11.
17. मुद्राराक्षस : तिलचट्टा, पृ. 30.
18. मुद्राराक्षस : तिलचट्टा, पृ. 10.
19. डॉ. रीता कुमार : स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, पृ. 134.
20. परितोष गार्गी : छलावा, पृ. 75.
21. शंकर शेष : घरौंदा, पृ. 183.

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विकलांग विमर्श : एक समावेशी दृष्टिकोण

वनीता रानी

शोध सार : विकलांगता एक अति महत्वपूर्ण और संवेदनशील विषय है। विकलांगता न केवल संबंधित व्यक्ति को बल्कि संपूर्ण समाज के विकास को प्रभावित करती है। विकलांगता के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना और पूर्वाग्रहों को समाप्त करना अत्यावश्यक है। इसके प्रति जागरूकता और समावेशिता को बढ़ावा देने, विकलांगों को समान अवसर और समान अधिकार देने के लिए विकलांग विमर्श का आरंभ हुआ है। विकलांग विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय है जो विकलांगों के मुद्दों, अधिकारों और समाज में विकलांग व्यक्तियों की स्थिति पर केंद्रित है। यह विमर्श न केवल विकलांग व्यक्तियों के अनुभवों और चुनौतियों को समझने में मदद करता है बल्कि समाज में समावेशिता और समानता को बढ़ावा देने के लिए भी आवश्यक है।

बीज शब्द : विकलांग, विकलांगता, विमर्श, विकलांग दृष्टिकोण, विकलांगता के पहलू, विकलांगों का भविष्य, विकलांगता विमर्श, विकलांग और साहित्य, साहित्य और विकलांग समाज, विकलांगता का परिप्रेक्ष्य।

प्रस्तावना : साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। समाज में घटित घटनाओं का साहित्यकार के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। साधारण जन के साथ साथ इन घटनाओं, दुर्घटनाओं एवम् परिस्थितियों का किसी भी साहित्यकार की चिंता व चिंतन का विषय बनना स्वाभाविक ही है। साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से ही साहित्यकार समाज के साथ संबंध स्थापित करता है। अतः साहित्य समाज का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। साहित्य की विधाओं के माध्यम से ही परिस्थितियों का उचित अवलोकन आने वाली पीढ़ी के लिए किया जा सकता है। साहित्य में सारे विषयों का समावेश है। प्रत्येक युग का साहित्य उस समय के परिवेश से ओत प्रोत रहता है। विभिन्न प्रकार के साहित्यिक विमर्श, समाज के हाशिए पर अपनी पहचान खोए हुए अंगों में अस्मिता बोध जगाने में निरंतर प्रयास का दूसरा नाम है।

मूल आलेख : विकलांगता एक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दा है, जो न केवल व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करता है, बल्कि समाज के समग्र विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डॉ.के.एस. बाजपायी जी के अनुसार, "जरा सोचिए जो जन्म से विकलांग है उसका जीवन दर्शन क्या होगा? शायद एक शून्य जिसकी हम कल्पना मात्र ही कर सकते हैं, उसकी सोच, उसका व्यवहार, बाधाएँ, लक्ष्यहीन दूसरों पर निर्भर जीवन और एक बहुत बड़ा प्रश्नवाचक चिह्न जिसका शायद उत्तर खोज पाना वाकई एक चुनौती है।"[1] समाज का एक अंश हो कर उनकी समस्याएँ अधिक हैं। राजेन्द्र अग्रवाल जी के अनुसार, "विकलांग भी समाज का एक महत्वपूर्ण भाग है।"[2] अर्थात् विकलांग केवल दया के पात्र नहीं हैं अपितु वे भी समाज में आत्मसम्मान से जीवन व्यतीत करने का अधिकार रखते हैं। विकलांगता शब्द का साधारण शब्दों में अर्थ है शारीरिक अथवा मानसिक स्थिति जो किसी व्यक्ति की चेष्ठाओं, ज्ञान इंद्रियों और गतिविधियों को सीमित करती है। यह बात चिकित्सा के अर्थ पर केंद्रित है।

विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण समय के साथ बदलते रहे हैं और यह विमर्श विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में विकसित हुआ है। यह आलेख विकलांग विमर्श के विभिन्न पहलुओं, इसके इतिहास, विकास, वर्तमान स्थिति, और भविष्य की संभावनाओं पर आधारित है।

विकलांगता विषयक शब्द और इसके सामाजिक संदर्भ : विकलांगता शब्द के अर्थ और स्वरूप के लिए विभिन्न विद्वानों की सोच में, उनके नजरिए में मतभेद रहे हैं। प्राचीन काल में विकलांगों के लिए मंगोल, स्पास्टिकस, अपंग, कुबड़ा आदि शब्द प्रयोग में लाए जाते थे। हालांकि यह शब्द समानार्थी हैं लेकिन इनमें शास्त्रीय रूप में भिन्नता है। अगर हम अपने देश भारत की बात करें तो यहां भी प्राचीन लंबे समय से डिसेबिलिटी और हैंडिकैप्ड को विकलांगता के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयोग में लाया जाता रहा है। कुछ शब्द तो इस प्रकार से उपयोग में लाए जा रहे हैं जैसे इनमें कोई अंतर नहीं है। जैसे दिव्यांग, निशक्त, अपंग, भिन्न सामर्थ्य, डिसएबल आदि। कई बार तो शोध पत्रों में भी इन्हीं शब्दों को अलग-अलग स्थान पर वाक्य अनुसार प्रयोग किया जाता है।

अगर विकलांगता विषयक शब्दों की बात विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर की जाए तो विकलांगता का सही अर्थ समझने में दुविधा होती है। इस दुविधा का मुख्य कारण

डिसेबिलिटी तथा हैंडिकैप्ड दोनों शब्दों का समानार्थक शब्दों के रूप में खुले से प्रयोग किया जाना है। यह विकलांगता को नियमित द्वामी रूप में मानसिक व शारीरिक नुकसान अथवा अस्वस्थता के रूप में स्पष्ट करता है।

विभिन्न प्रकरणों को दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि उपरोक्तशब्दों के बीच सूक्ष्म अंतर है। क्रिप्लेड (crippled) शब्द का अर्थ है शारीरिक विकृति का शिकार व्यक्ति। कई बार विकलांगों के साथ द्वैतभाव के नकारात्मक और अस्वीकार्य प्रभावों को वाचित करने हेतु डिसएडवांटेज शब्दों का प्रयोग साधारण बोलचाल में किया जाता है।

शब्दकोश के अनुसार अर्थ :

1. बृहद प्रामाणिक हिंदी कोश तथा मानक विशाल हिंदी शब्दकोश के अनुसार, "जिसका कोई अंग टूटा या बेकाम हो, खंडित अंग वाला।"[3]

2. डॉ विनय कुमार पाठक द्वारा रचित विकलांग विमर्श में कथित है "विकल ; विकृत; न्यून; अपूर्ण; अक्षम; अल्पक्षम शरीरांग या मंदबुद्धि वाले प्राणी को विकलांग कहते हैं।"[4]

3. मिस्र का रिहेबिलिटेशन लॉ विकलांग व्यक्तिकी परिभाषा इस प्रकार देता है "किसी भी व्यक्तिको विकलांग माना जा सकता है यदि वह आत्मनिर्भर रहने में असमर्थ हो जाता है और लगातार इस स्थिति में बना रहता है।"[5]

4. रूस में विकलांग व्यक्ति की परिभाषा है -"वह व्यक्ति जिसका स्वास्थ्य किसी स्थाई विकलता अथवा अंगों की कार्य क्षमता में गड़बड़ी, दुर्घटना, बीमारी अथवा चोट आदि के कारण बिगड़ जाता है। जिसके कारण उसके कार्य क्षमता में बाधा पड़ती हैं और जिसके कारण उसे सामाजिक सुरक्षा देना अति आवश्यक हो जाता है।"[6]

5. क्रो एंड क्रो के अनुसार, "एक व्यक्ति जिसमें कोई इस प्रकार का शारीरिक दोष होता है जो किसी भी रूप में उसे सामान्य क्रियाओं में भाग लेने से रोकता है या उसे सीमित रखता है, उसे हम विकलांग कह सकते हैं।"[7]

6. डा.बाल गोविंद तिवारी के अनुसार "विकलांगता एक ऐसी स्थिति है जो किसी भी व्यक्ति को, किसी भी व्यवस्था में उसके सामान्य व्यवहार, कार्य शक्ति, विचार एवं दैनिक कार्यों में न्यूनाधिक प्रभावित कर आंगिक मानसिकता, सामाजिक एवं भावनात्मक संतुलन उत्पन्न कर देती है।"[8]

7. मराठी शब्दकोश के अनुसार, "जन्म से विकलांग और जन्म होने के बाद किसी कारण आने वाली विकलांगता, ऐसे दो मूलभूत प्रकार हैं। इसमें मूलतः अंतर यह है कि पहले प्रकार में पुनर्वसन की आवश्यकता होती है परंतु अनिवार्य नहीं, क्योंकि अर्थोत्पादन करने के लिए उन्हें समय प्राप्त होता है। दूसरे प्रकार में अर्थोत्पादन अचानक खंडित हो जाने के कारण उनका पुनर्वसन यथा संभव जल्दी से जल्दी होना आवश्यक होता है। अगर पुनर्वसन जल्दी नहीं हो तो परावलंबी होने की अधिक संभावना होती है। एक से अधिक कमियाँ रहीं तो पुनर्वसन का प्रश्न अधिक जटिल बन जाता है। छोटे बच्चों की विकलांगता को पहचानना मुश्किल होता है फिर भी उसे जानना आवश्यक होता है। जांच के बाद यदि यह निश्चित हो गया कि बच्चा विकलांग है तो उसके शारीरिक, मानसिक और भावनिक जांच कर विकलांगता की व्याप्ति, स्वरूप निश्चित की जाती है उसके अनुसार किस प्रकार का उपचार किया जाए इसका अंदाजा लिया जाता है।"[9]

8. प्रो. दामोदर जी ने विकलांगता को परिभाषित करते हुए कहा है, "कुदरत की दी हुई शारीरिक, मानसिक दुर्बलता, न्यूनता या निरूपता विकलांगता है। यह दुख की जननी है। लेकिन इस सत्य को न स्वीकारते हुए उससे दूर भागना या डरना कायरता है। उसका डटकर सामना करना ही पुरूषार्थ है। शरीर भले ही विकलांग हो, मन विकलांग नहीं होना चाहिए, क्योंकि मन तो उर्जा का केंद्र है। जो व्यक्ति, संस्था या समाज विकलांगों के अस्तित्व की रक्षा व उनकी उन्नति के लिए काम करता है वही मानवता का सच्चा मित्र है उसका प्रहरी है।"[10]

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण का विकास विभिन्न ऐतिहासिक कालों में हुआ है। प्राचीन समाजों में विकलांगता को अक्सर कलंकित किया जाता था और विकलांग व्यक्तियों को समाज से अलग रखा जाता था। मध्यकालीन यूरोप में,विकलांगता को दैवीय दंड के रूप में देखा जाता था।

प्राचीन काल से, विकलांगता को मानव जीवन का अभिशप्त रूप माना जाता रहा है। किसी मनुष्य का सामान्य स्वरूप से हट कर विकृत, अक्षिप्त रूप ही विकलांगता है। आज विश्व की आबादी का एक बड़ा भाग किसी न किसी रूप की विकलांगता से पीड़ित है। इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि विकलांग व्यक्ति को सामाजिक, धार्मिक एवं विविध अधिकारों से वंचित करके उनके जीवन को

अभिशप्त बनाया गया था। विकलांगता सामान्यता दो प्रकार की होती है- जन्म से विकलांग होना या अपाहिज होना और जन्म के बाद किसी कारण से अपाहिज होना। प्राचीन साहित्य अध्ययन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति की विकलांगता संबंधी बहुत से अंधविश्वास भी प्रचलित रहे हैं । यहाँ तक कि पाप-पुण्य और कर्म सिद्धांत को भी विकलांग होने का कारण अथवा आधार माना जाता रहा है। इसके अतिरिक्तव्रत, अनुष्ठान, दान एवं श्राप आदि भी इसके उद्‌भव विकास के कारण माने जाते हैं। वैदिक काल से आज तक कई प्रकार के युद्ध, महामारी, प्राकृतिक प्रकोप भी विकलांगता के लिए ज़िम्मेदार है। गर्भवती स्त्रियों को गर्भधारण से लेकर प्रसूति समय तक उनके खान- पान, उनको वांछनीय पौष्टिक तत्त्वों का न मिलना भी विकलांगता का कारण है।

19वीं और 20वीं शताब्दी में, विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आया। चिकित्सा मॉडल के अनुसार विकलांगता को एक समस्या के रूप में देखा गया, जिसे चिकित्सा हस्तक्षेप के माध्यम से ठीक किया जा सकता है। इसके विपरीत, सामाजिक मॉडल ने विकलांगता को सामाजिक बाधाओं के परिणाम के रूप में देखा, जो विकलांग व्यक्तियों की स्वतंत्रता और समानता को प्रभावित करती हैं। देवेंद्र सिंह गह्वार विकलांगता के बारे में लिखते हैं, "हमारे भारतीय समाज में विकलांगता एक अभिशाप है इससे जीवन नष्ट हो जाता है। परिवार संतप्त होता है मगर कुछ ऐसे भी अपंग हैं जो अपनी विकलांगता को अपनी वैशिष्ट्य बना लेते हैं और जीवन में आगे बढ़ जाते हैं।"[11]

वर्तमान स्थिति : वर्तमान प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने 2015 में 'मन की बात' कार्यक्रम में विकलांगों को दिव्यांग अर्थात् दिव्य अंगों वाला नाम दिया है। सच तो यह है कि जो व्यक्ति किसी एक अंग से अशक्तहोता है, वह किसी दूसरे अंग से सशक्तहोता है। ईश्वर ने उसे किसी न किसी रूप में दूसरों से अलग, विशेष शक्ति/क्षमता दी होती है।

आज के समय में, विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण में और भी बदलाव आया है। विभिन्न देशों में विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा के लिए कानून बनाए गए हैं। उदाहरण के लिए, भारत में 'विकलांगता अधिकार अधिनियम, 2016' ने विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों को सुनिश्चित किया है।

हालांकि, अभी भी कई चुनौतियाँ हैं। विकलांग व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार, और स्वास्थ्य सेवाओं में समान अवसर प्राप्त नहीं होते हैं। इसके अलावा, सामाजिक पूर्वाग्रह और भेदभाव भी विकलांग व्यक्तियों के लिए बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। विकलांग होना और स्त्री होना अर्थात् स्त्री की विकलांगता न केवल उसके लिए बल्कि पूरे समाज के लिए चुनौती है। स्त्री जो समान अधिकार, सुविधाएँ न मिलने पर शारीरिक कष्ट के साथ मानसिक संताप भी भोगती है। उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति के सही होने से ही एक अच्छे समाज निर्माण की आशा की जा सकती है।

विकलांग विमर्श के प्रमुख पहलू :

सामाजिक समावेशिता : विकलांग व्यक्तियों को समाज में समानता और सम्मान के साथ जीने का अधिकार है। सामाजिक समावेशिता का अर्थ है कि विकलांग व्यक्तियों को समाज के सभी क्षेत्रों में भागीदारी करने का अवसर मिले।

शिक्षा और रोजगार : शिक्षा और रोजगार विकलांग व्यक्तियों के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। विशेष शिक्षा कार्यक्रम और समावेशी शिक्षा नीतियाँ विकलांग व्यक्तियों को सशक्तबनाने में मदद कर सकती हैं।

स्वास्थ्य सेवाएँ : विकलांग व्यक्तियों को स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित करना आवश्यक है। यह न केवल चिकित्सा उपचार के लिए बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण के लिए भी महत्वपूर्ण है।

सामाजिक पूर्वाग्रह : समाज में विकलांगता के प्रति पूर्वाग्रह और भेदभाव को समाप्त करना आवश्यक है। इसके लिए जागरूकता कार्यक्रम और शिक्षा की आवश्यकता है।

नीतिगत पहल : सरकारों और संगठनों को विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा के लिए नीतियाँ बनानी चाहिए। ये नीतियाँ विकलांग व्यक्तियों के लिए विशेष अवसरों और सेवाओं को सुनिश्चित कर सकती हैं।

भविष्य की संभावनाएँ : समाज ने विकलांग को केवल अशक्तही माना है। उसे केवल सहानुभूति और दान का पात्र ही समझा है लेकिन कुछ अग्रणी सामाजिक संस्थाओं ने अपने सकारात्मक प्रयास से यह प्रमाणित कर दिया कि "विकलांग को सिर्फ सहारे की आवश्यकता होती है जो उन्हें जीवन जीने की जिजीविषा दे सके, न कि दया और दान की।" श्रीमती चटर्जी ने विकलांग के प्रति दृष्टिकोण को परिवर्तित करने हेतु जोर देते हुए कहा, "पूरे ब्रह्मांड का रवैया विकलांगों के प्रति उपेक्षात्मक है जिसे बदलना ही होगा। एक राजनेता से लेकर एक आम नागरिक तक अपना नजरिया इस परिप्रेक्ष्य में

बदलना होगा।"[12] पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी ने अपने कार्यकाल में अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष का उद्घाटन करते समय घोषणा भी की थी, "हम देश में विकलांगों की संख्या जान कर उनके विकास और सुविधाओं के लिए हर संभव प्रयास करेंगे।"[13] विकलांग विमर्श का भविष्य सकारात्मक दिशा में बढ़ सकता है यदि निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान दिया जाए:

जागरूकता और शिक्षा : समाज में विकलांगता के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है। स्कूलों और कॉलेजों में विकलांगता के मुद्दों को पाठ्यक्रम शामिल किया जा सकता है।

प्रौद्योगिकी का उपयोग : तकनीकी विकास विकलांग व्यक्तियों के लिए नए अवसर प्रदान कर सकता है। विशेष उपकरण और सॉफ्टवेयर विकलांग व्यक्तियों की स्वतंत्रता और कार्यक्षमता को बढ़ा सकते हैं।

समावेशी नीतियाँ : सरकारों को विकलांग व्यक्तियों के लिए समावेशी नीतियाँ बनानी चाहिए, जो उनके अधिकारों की रक्षा करें और उन्हें समाज में समान अवसर प्रदान करें।

सामाजिक परिवर्तन : समाज में विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव लाने के लिए सामूहिक प्रयास आवश्यक हैं। यह प्रयास व्यक्तिगत स्तर से लेकर सामुदायिक और राष्ट्रीय स्तर तक हो सकते हैं। स्त्री को शिक्षित करना प्राथमिक कर्तव्य है क्योंकि अग्रलिखित कथन कोई अतिशयोक्तिनहीं है,"जागरूक और साक्षर समाज जो कि लोकतंत्र का स्तंभ है, के निर्माण में शिक्षित स्त्री का महत्वपूर्ण योगदान है।"[14] "महिलाओं के शोषण एवं उत्पीड़न को रोकने के लिए आवश्यक है कि उनका बहुमुखी विकास किया जाये। संविधान और कानून से सम्बन्धित ज्ञान वृद्धि के प्रयास किये जाएँ।"[15]

निष्कर्ष : विकलांग विमर्श एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा है, जो न केवल विकलांग व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करता है बल्कि समाज के समग्र विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमें विकलांग के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, ताकि हम एक समावेशी समाज का निर्माण कर सकें। विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करना और उन्हें समाज में समान अवसर प्रदान करना हमारी जिम्मेदारी है। उन्नति की राह इकाई से दहाई के रूप में आगे बढ़ती। इसी प्रकार व्यक्ति से व्यक्तियों का फिर इनसे समाज का निर्माण होता है किंतु विकलांग जनों पर यह तथ्य लागू नहीं होता। विकलांग को सदैव सकलांग तो नहीं बनाया जा सकता लेकिन उस में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा कर, उसे भी अपने अस्तित्व का बोध करवाया जा सकता है। विकलांग व्यक्तियों को समाज में समानता और सम्मान के साथ जीने का अवसर मिलेगा।

संदर्भ :

1. डॉ.विनय कुमार, पाठक, विकलांग विमर्श : दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ 211
2. डॉ.विनय कुमार, पाठक, विकलांग विमर्श,: दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ 142
3. आ. रामचंद्र, वर्मा, बृहद प्रामाणिक हिंदी कोश, पृ 859
4. डॉ. विनय कुमार, पाठक, विकलांग विमर्श : दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ 155
5. viklangta.com
6. viklangta.com
7. डॉ एल. बी बाजपायी, विशिष्ट बालक, प्रकाशन केंद्र पुस्तक, चौंक,लखनउ -24.
8. शिक्षा मनोविज्ञान पृ 509
9. मराठी शब्दकोश, खंड 1, संपादक लक्ष्मण शास्त्री जोशी,पृ 265
10. डॉ.विनय कुमार, पाठक, विकलांग विमर्श : दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ 18
11. डॉ. विनय कुमार, पाठक, विकलांग विमर्श : दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ 101
12. डॉ.विनय कुमार, पाठक, विकलांग विमर्श : दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ 231
13. अपंग जिनसे दुनिया दंग, हरिकृष्ण तैलंग, पृ 09
14. सुमेधा, पाठक, स्त्री- शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स 2012, पृष्ठ संख्या (71)
15. सुमेधा, पाठक, स्त्री-शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, 2012, पृष्ठ संख्या (5)

निर्देशिकाः डॉ. मनप्रीत कौर

शोधार्थी हिंदी , गुरूकाशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, भटिंडा (पंजाब)

विपिन बिहारी की कहानियों में प्रतिरोध का स्वर - 'कन्धा' में संकलित कहानियों के विशेष संदर्भ में

मुहम्मद साबित टी

समाज के सबसे दमित या पीड़ित वर्ग जो दलित कहलाते हैं उन्हें युगों से हाशिये पर रखी जा रही है। सम्पूर्ण भारत में दलितों की स्थिति एक जैसी है। सभी मानवीय मान्यताओं से दलितों को हमेशा वंचित और दबाये रखे जाते हैं। अपने साथ पीढ़ियों से हो रहे इस अन्याय के खिलाफ वह प्रतिरोध व्यक्त करने लगे हैं। उन दमित समुदाय की समस्याएँ और उनके उत्थान को प्रमुखता देते हुए स्वानुभूति अभिव्यक्तिके लिए जो साहित्य बनाया गया उसे दलित साहित्य कहते हैं। दलित साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसमें अभिव्यक्तप्रतिरोध है। प्रतिरोध युगों से हो रहे अन्याय और शोषण के विरुद्ध दलित की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। प्रतिरोध के सन्दर्भ में जितेन्द्र श्रीवास्तव ने लिखा है- "प्रतिरोध स्वतंत्र मानस की पहचान है। अनिवार्य रूप से प्रतिरोध वही करता है जो स्वतंत्र है या स्वतंत्र होने के संघर्ष में शामिल है।"[1] दलित साहित्य पारंपरिक मूल्यों को नकारने के साथ उन्हें अपने अधिकारों को प्राप्त करने की प्रेरणा भी देते हैं। यह नकारात्मकता दलित साहित्य की प्रतिरोध है, वही इसकी पहचान है। दलित अपने जन्म से ही संघर्षशील है। एक अर्थ में दलितों का जन्म स्वयं एक प्रतिरोध है। आज दलितों के प्रतिरोध की अभिव्यक्ति दलित साहित्य का प्रमुख विषय है। तथापि दलित साहित्य का उत्भव कैसे और कब हुआ, इसके संबंध में मतभेद हो सकते हैं परन्तु दलित साहित्य की कसौटी उनका प्रतिरोध है उसपर कतई संदेह नहीं है।

हिंदी दलित साहित्य के प्रमुख कहानीकार विपिन बिहारी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलितों के विभिन्न अनछुए समस्याओं को उजागर करते हुए उनके प्रतिरोध और संघर्ष को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। दलितों का प्रतिरोध जिस तीव्रता से दलित आन्दोलनों और उसके फलस्वरूप दलितों के मन में उभरता है उसका सच्चा चित्रण विपिन बिहारी की कहानियों में देखने को मिलता है। वे अपनी कहानी में अम्बेडकर की विचारधारा को प्रमुखता देते हैं, इसमें शोषकों के विरुद्ध उनका संघर्ष और प्रतिरोध अधिक मुखरित है।

उनकी कहानी 'कब्ज़ा' में सवर्ण लोग दलितों को आपस में लड़वाकर उससे लाभ उठाते हैं। आपस में लड़ने के कारण उनके बीच की एकता और भाईचारा भी नष्ट हो जाता है और वे अपने अधिकारों के बारे में सोचते भी नहीं है। जिसके कारण युगों से दलितों के साथ हो रहे अन्याय उसी तरह चलते रहते हैं। दलितों के पूर्वजों की ज़मीन अब भी सवर्णों के पास है। वे अपने ज़मीन के लिए संघर्ष भी नहीं करते। लेकिन 'निवास' जो नई पीढी का प्रतिनिधित्व करता है वह अपने अधिकारों के लिए लड़कर उसे हासिल करने के लिए प्रयत्न करते हैं, वह कहता है- "लेकिन बाबू ....मैं चुप नहीं बैठूंगा, अपने पूर्वजों की ज़मीनें वापस ले कर ही रहूँगा।"[2] यह उनका प्रतिरोध है, युगों से चलती आ रही अज्ञता से मुक्ति पाकर अपने अधिकारों की पहचान होने के बाद वह प्रतिरोध का पहला कदम उठाता है। दलितों का प्रतिरोध उनकी शिक्षा से प्रारंभ होता है। दलित जब शिक्षित होते हैं तब युगों से हो रहे अन्याय का प्रतिरोध करने की इच्छा उनमें जागृत होती है। निवास यहाँ केवल अक्षरज्ञानी मात्र न रहे उन्होंने गाँव से उच्चतम श्रेणी में हाईस्कूल पास की और कालेज तक की पढाई भी की। कोलेज के अध्ययन के दौरान सवर्णों के साथ कई बार उसकी टकराहट होती है। निवास चुप न रहते हुए सभी से चिल्लाकर अपना प्रतिरोध व्यक्त करता है, इस सन्दर्भ में निवास कहता है- "वे कुछ भी बोलें, हम सुन जाएं, मान लें ? जिस रूप में हो, उन्हें जवाब मिलते रहना चाहिए"[3] निवास जाति को सबसे श्रेष्ठ मानकर जीनेवालों का कभी आदर नहीं करते और वह सारे अन्यायों के विरुद्ध अपने प्रतिरोध को व्यक्त करता है। अकेले इन सवर्णों से लड़ने के लिए वह नहीं डरता है और जितना उससे हो सकता है उतना वह करता है, वह कहता है - "वे मुझे पीटेंगे, मैं भी पीटूंगा। वे दस तमाचे मारेंगे तो दो मैं भी धर दूंगा। दबकर रहने का समय अब नहीं है। आदर्श और नैतिकता सिर्फ हमारे लिए ही क्यों, उनके लिए क्यों नहीं ? अपने हित में सारा ईमान-धरम छोड़कर काम कर रहे हैं वे, हमें भी ईमान-धरम छोड़ना होगा। वे छल-प्रपंच से आगे निकलते हैं , तब हमें भी छल-प्रपंच अपनाना होगा, नहीं तो

ये लोग जीने नहीं देंगे।"[4] दलितों को इस समाज में औरों की तरह जीने के लिए भी कठिनाई होती है तब वह स्वयं प्रतिरोध करने में मजबूर हो जाते है , दलितों का प्रतिरोध उनकी विवशता और निस्सहाय अवस्था की देन है।

सालों से सवर्ण दलितों की ज़मीन हड़प रहे हैं और इस बात से अज्ञात दलित अपने ही ज़मीन पर मज़दूरी कर रहे हैं इसका प्रतिपादन इस कहानी में है। निवास अपने पुरखों की ज़मीन के लिए संघर्ष करता है। अपने ज़मीन की हक़ पूछने पर वे पुलिस के नाम से डराते है, पुलिस सत्ता के इशारे पर नाचनेवाले कठपुतलियाँ मात्र रह जाते हैं और सत्ता हमेशा सवर्णों के पास ही रहता है। लेकिन निवास अपने निर्णय से एक कदम भी पीछे नहीं हटता है। सत्ता और पैसा सवर्णों के पास है तो दलितों के पास आखिरकार एक ही रास्ता बचा रहता है कि वह किसी भी तरह प्रतिरोध करके अपने अधिकारों को हासिल करें। निवास जब अपनी ज़मीन के लिए संघर्ष करता है तब जो लोग जिनका भी ज़मीन इन ज़मींदारों ने हड़प कर रखा था वह भी निवास के साथ इस संघर्ष में जुड गया। इससे भयभीत होकर ज़मींदार निवास की हत्या करने की कोशिश करते हैं ताकि वे इस संघर्ष को किसी भी प्रकार ख़तम कर सके। दलितों के बीच इस संघर्ष के दौरान भाईचारा का संबंध पक्का बन जाता है। इसके कारण टोले के लड़कों के साथ निवास ने हत्यारों से लड़ा। इस संघर्ष की गंभीरता पर प्रभाव डालकर अपनी राय को व्यक्त करते हुए निवास कहता है "ये लड़ाई अब थमनेवाली नहीं है। आप लोगों ने हमें जो युगों से मूर्ख बनाया है, अब हम मूर्ख बनने के लिए तैयार नहीं हैं। खून-खराबा होगा भी तो पीछे कौन हट रहा है? आप लोगों से यही कहेंगे कि अपनी मर्जी से हमारी जमीनें छोड़ दें, नहीं तो जहाँ जाना है जाइए, जिसे बुलाना है बुलाइए। देखते हैं कि हम टिकते हैं कि आप टिकते हैं।"[5] यहाँ उनका प्रतिरोध एक संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। दलित अपने प्रतिरोध किसी भी तरह अभिव्यक्त करते हैं क्योंकि वह उनकी मजबूरी है। दलितों को यह एहसास हो गया है कि गुलामी करके जीवित रहने से बेहतर है अपनी ज़मीन के लिए लड़कर जीवन को त्याग देना। रामबदन शर्मा दलितों की अज्ञता का लाभ उठाते हुए उनको प्रलोभन में फंसाने की कोशिश करते है तब निवास अपने साथियों से रामबदन से दूर रहने की सलाह देते हैं क्योंकि उसे आशंका था कि कई वे रामबदन के प्रलोभन में फस जाएंगे। निवास अपने मित्रों को रामबदन के जाल से बचाते हैं। इस तरह बिना किसी प्रलोभन में न फसते हुए एकता के साथ अपने अधिकारों के संघर्ष में अटल रहने की चेष्टा ही उनका प्रतिरोध है। रामबदन शर्मा और अन्य सवर्णों ने जो भी प्रलोभन और कठिनाईयाँ इन लोगों पर थोपा उसका प्रतिरोध निवास के ज़रिये किया है। कहानी के ज़रिए दलितों को ताकत का विस्तार करने का आदेश दिया जाता है, ताकत का विस्तार करने पर उन्हें सक्षम बनने में मदद मिलेगा। उनके ताकत का विस्तार या सक्षम होने की जो भी प्रतिक्रिया है वह सब उनके प्रतिरोध ही है।

स्त्री का उत्थान और उसके प्रतिरोध का सही अंकन करनेवाली कहानी है 'औरत की कोई जात नहीं होती'। इस कहानी में शालिनी एक बामनी है , उससे सुभाष नामक दलित युवक प्रेम करता है और ब्याह करके उनके घर ले जाता है। सुभाष की माँ कौशल्या जाति में विश्वास करती है और वे अपनी बहु के रूप में शालिनी को नहीं स्वीकारती है। भारत में जाति की कट्टरता केवल सवर्णों के परिवार में मात्र नहीं वह सभी घर में घुसकर झकझोर कर देती है, उससे दलित समाज भी मुक्त नहीं है। कहानी में स्त्रियों की मुक्तिको प्रमुखता दी गई है। स्त्री चाहे दलित हो या सवर्ण, वह हमारी समाज में पुरुषों की भूख मिटाने का एक उपकरण मात्र है, उसे हमेशा शोषितों की कोटि में ही रखे जाते हैं। इसका मुख्य कारण शिक्षा का अभाव है। इस कहानी में शालिनी बार बार कहती है - "औरत की कोई जात नहीं होती। शालिनी सभी पुरानी मान्यताओं को नकारती है, वह पूजा-पाठ का भी विरोध करती है। इस कहानी में शालिनी स्वयं एक दलित से ब्याह करती है और वह अंतर जातीय विवाह का प्रोत्साहन भी करती है। शादी यहाँ जाति विशेष के पुरुष और स्त्री के बीच होती है। यह व्यवस्था तोड़ने के लिए ही शालिनी अंतर जातीय विवाह को प्रोत्साहन देती है और यही उसका प्रतिरोध है। शालिनी दलितों के बीच का अंधविश्वास मिटाने और दलित नारी की शिक्षा और नौकरी पर ज़ोर देते हुए समाज की सारी मान्यताओं को नकारते हुए दलितों को जागरूक करने की कोशिश करती है। सभी ब्राह्मणवादी व्यवस्था का वह विरोध करती है और यही विरोध उसका प्रतिरोध है।

स्त्री का प्रतिरोध और उसके विद्रोह का सही चित्रण अंकन करने वाली कहानी है 'जनेउ'। इस कहानी में शर्मा नामक एक ब्राह्मण कान्तेश नामक दलित युवक

को उनके भाषण पर अभिनन्दन देते हुए अपने वश में कर लेता है और बाद में उसे अपनी कठपुतली बना लेता है। शर्मा और उनकी पत्नी की पारंपरिक मान्यताओं और जनेउ को कान्तेश ने अपना लिया। ब्राह्मणवादी समाज का इरादा है कि किसी भी तरह उनके विचारों को समाज में बरक़रार रखे। कान्तेश की पत्नी उसके पति के ब्राह्मणवादी व्यवहारों से व्याकुल होकर नाराज़ हो जाती है। पुरुष की जो भी इच्छा हो वह सब स्वीकार करने की आवश्यकता स्त्री को नहीं है। वह अपने मौन का भंग करते हुए विद्रोही बनकर उसके प्रतिरोध को व्यक्त करती है। दलित परिवार में स्त्री शोषित ही है उसकी मुक्तिकेवल प्रतिरोध से ही संभव है।

'हार्ड कोर' नामक कहानी में दलितों की आर्थिक विषमताएँ और दलितों पर सवर्णों के शोषण का चित्रण है। युगों से हो रहे इस शोषण और अन्याय को सहन कर चुपचाप रहने के लिए दलित तैयार नहीं है। वे उनपर हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाते है। प्रभु सिंह ने 'सच्चे' नमक एक दलित किसान को गुलाम बनाकर रखा है और उससे अत्यंत तेज़ी से काम को निपटाने का आदेश देते है तब वह अपने प्रतिरोध को व्यक्तकरते हुए जवाब देता है- "मालिक हम मशीन नहीं हैं, जितना होता है, उतना करते ही हैं। हम काम करनेवाले हैं, कामचोर नहीं हैं।"[6] युगों से चुप रहनेवाला यह समाज अब बोलने लगा है और यह उनका प्रतिरोध है। समाज में चलते आ रहे भेदभाव को बदलने की आवश्यकता और उसके लिए दलित समाज में किस तरह के परिश्रम की आवश्यकता है उसकी दिशा 'रोहन' के माध्यम से कहानी में प्रस्तुत किया है। रोहन जब कॉलेज में पढ़ता था तब मिथिलेश नामक एक दलित युवक उसका मित्र था। उस समय कॉलेज में सवर्ण बच्चों ने एक जमात बनायीं तब उसके विरोध में और दलित विद्यार्थियों की सुरक्षा के लिए मिथिलेश एक नई जमात कॉलेज में बनाता है। दलित समाज की नई पीढ़ी सब कुछ सहन कर रहने के लिए तैयार नहीं है वे अपना प्रतिरोध विभिन्न रूप से दिखाते हैं।

'कन्धा' कहानी में सवर्ण नए-नए तरीके से दलितों को गुलाम बनाते है और उनका शोषण करते है इस कहानी में इत्यादि बातों पर जोर दिया गया है। कहानी में सकलदेव बाबू ने बरत नामक दलित युवक को अपने बेटे की तरह पाला। लेकिन यह केवल एक ही उद्देश्य से है की जीवन भर एक दलित को अपना गुलाम बना कर रख सकेगे। किसी को शारीरिक रूप से गुलाम बनाने से भी खतरनाक है मानसिक रूप से आश्रय देकर उसपर गुलामी करना, क्योंकि यहाँ वह उनके मालिक से सदैव आभार रहेगा। सकलदेव बाबू ने गाँव के कई लोगों को अपने हित के लिए 'बरत' के हाथों मरवाया। बरत ने जिन लोगों को मारा था वह सब दलित ही थे, असल में एक दलित के हाथ से विरोध करने वाला दूसरे दलितों को मार रहे थे। जब बरत को अपनी गलती का एहसास हुआ तब से वह अपना प्रतिरोध व्यक्तकरने लगा। बरत कहता है- "जब तक समझ नहीं थी, मैं बुड़बक बनता रहा, अब मैं बुड़बक नहीं बनूँगा। जो मन में आए कर लो। मुझे मार दोगे..... मार दो। मर जाउंगा और क्या?"[7] समाज में दलितों पर होने वाले अत्याचार के बारे में जब उनको एहसास होगा तभी वह इन सब के प्रति विरोध कर सकेंगे। यह विरोध उनका प्रतिरोध है। दलितों को अपने अधिकारों के प्रति ज्ञान नहीं है इसी कारण वह उनपर हो रहे अन्याय का प्रतिरोध नहीं कर पाते है। जब उनकी इस अज्ञता दूर हो जाएगी तभी वह उनका प्रतिरोध पूर्ण रूप से कर सकता है।

शिक्षा के महत्त्व और दलितों के सक्षम बनने की आवश्यकता के बारे में अनुरोध करनेवाली कहानी है 'अतीतजीवी'। इस कहानी में खरखर सिंह और माधो सिंह नामक दो सवर्णों के अन्याय का चित्रण किया गया है। इस कहानी में स्त्रियों पर हो रही अत्यंत क्रूरता और शोषण का चित्रण भी मिलता है। कहानी में एक दुसाध जाति का व्यक्ति डॉक्टर बन जाता है और आगे उनको अच्छी नौकरी भी मिल जाती है । इसके कारण अच्छी ज़िन्दगी जीने के लिए वह सक्षम बन जाता है। दलितों का उत्थान केवल उनकी शिक्षा से ही प्राप्त होगा। दलितों को यह समझना होगा कि जीवन में उनको मदद करने के लिए और सही राह दिखाने के लिए कोई नहीं होगा। शिक्षित बनकर अच्छी नौकरी प्राप्त करके सक्षम बनना दलितों के लिए अनिवार्य है। दलित को शिक्षा केवल नौकरी प्राप्त करने के लिए मात्र नहीं बल्कि वह उनका प्रतिरोध भी है।

दलितों पर युगों से हो रहे अन्याय से मुक्तहोना उनकी आवश्यकता है। इसके लिए दलितों को सारी पुरानी मान्यताओं और रूढ़ीयों को नकारते हुए अपने प्रतिरोध व्यक्त करना ज़रूरी बन गया है। दलित अपने प्रतिरोध के ज़रिए ब्राह्मणवाद द्वारा बनाए गए रीति-रिवाजों का खंडन कर रहे

हैं। दलित अपने अधिकारों के बारे में अनिवार्य रूप से जागरूक होने से ही वह अपना प्रतिरोध की आवाज़ रेखांकित कर सकेगा। शिक्षा ही सभी ज्ञान का दरवाज़ा है। शिक्षा ही वह हथियार है जिससे दलित समाज अन्याय और अत्याचार से लड़ पायेगा। पहले शिक्षित होकर सामाजिक और आर्थिक रूप से सक्षम बनना चाहिए, फिर उनपर हो रहे अन्याय के विरुद्ध लड़ना चाहिए। शिक्षित होना, अपने अधिकारों को मांगना, अन्याय के विरुद्ध लड़ना और संघर्ष करना यह सब दलितों के प्रतिरोध के विविध रूप है। दलित उनके प्रतिरोध में आक्रामकता से नहीं बल्कि इस समाज की विचित्र कुरीतियों से दमित समाज की मुक्ति के लिए प्रतिरोध करते हैं। उनके प्रतिरोध में अभिव्यक्तनकारात्मकता और संघर्षणीयता सिर्फ उनकी मजबूरी के कारण है। अपने मौन का भंग करके किए जाने वाले प्रतिरोध सालों से हो रही गुलामी से मुक्ति पाने के लिए है और यह प्रतिरोध दलितों का एकमात्र रास्ता है जिससे वह इस धरती पर सुकून की ज़िन्दगी जी सकेगा।

सन्दर्भ सूचीः

1. दलित साहित्य : संवेदना के आयाम , संपादक पी. रवी, वी. जी. गोपालकृष्णन पृष्ठ 80
2. कन्धा, विपिन बिहारी, के.बी.एस. प्रकाशन दिल्ली, 2021, पृष्ठ 13
3. वही, पृष्ठ 14
4. वही, पृष्ठ 14
5. वही, पृष्ठ 24
6. वही, पृष्ठ 50
7. वही, पृष्ठ 111

शोध छात्र , कालीकट विश्वविद्यालय

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'परिहासिनी' - किसकी प्रसिद्ध लघुकथा है?
2. हिंदी के पहले समानार्थी शब्दकोश का निर्माण किसने किया?
3. 'कनुप्रिया' किसकी रचना है?
4. 'मन मेरी सुई, तन तेरा धागा'-किसकी पंक्ति है?
5. किस निबंध में 'प्रयोगवाद' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया है?
6. 'राजा नंगा है' - किसका नाटक है?
7. 'औचित्य दर्शन' किसकी आलोचनात्मक रचना है ?
8. किसने नाटक की भाषा को 'हाशिए की भाषा' कहा है ?
9. 'तूफानों के बीच' किस विधा की रचना है?
10. नाथ संप्रदाय में जलंधर को क्या कहा जाता है?
11. 'पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा है' किसका कथन है?
12. चुका भी हूँ मैं नहीं/ कहाँ किया मैंने प्रेम अभी -किसकी पंक्तियाँ हैं?
13. उर्दू साहित्य की प्रथम गद्य रचना किसे माना जाता है ?
14. 'वयं रक्षामः' किसका उपन्यास है?
15. मनोहर श्याम जोशी अपने उपन्यासों को क्या कहते हैं?
16. 'अकहानी' आंदोलन का प्रवर्तक कौन है?
17. 'परिंदे' को किसने हिंदी की पहली कहानी मानी है?
18. ब्रजरत्नदास ने किसकी जीवनी लिखी?
19. 'घुटन' किसकी आत्मकथा है?
20. वर्ष 2025 का 'बुकर सम्मान' किस भारतीय रचनाकार को प्राप्त हुआ?

(उत्तर : पृष्ठ 39)

विकास बनाम विस्थापन : 'विस्थापित' उपन्यास के विशेष संदर्भ में

डॉ अनघा ए एस

बीसवीं सदी की एक दुखद घटना के रूप में, विस्थापन दुनिया भर में एक गहरी चिंता का विषय होने के कारण आज यह साहित्य का ज्वलंत विषय बन गया है। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विस्थापन से संबंधित मुद्दों और समाज पर इसके विभिन्न रूपों के प्रभाव पर प्रकाश डाला है।

अमिता सिंह एक सुप्रसिद्ध समकालीन लेखिका हैं। अमिता सिंह द्वारा लिखित उपन्यास 'विस्थापित' हिंदी साहित्य जगत में सर्वाधिक चर्चित है। अमिता सिंह ने अपने उपन्यास में पलायन के कई रूपों का चित्रण किया है। अपने उपन्यास में, लेखिका ने पलायन के मुद्दों का बहुत स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। उपन्यास उस सरकार और कॉर्पोरेट को बेनकाब करता है जो विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी ज़मीन से जबरन बेदखल कर देते हैं और उन्हें उनके शांतिपूर्ण जीवन से उखाडते हैं। विस्थापन कई रूपों में होता है।अपनी ही जमीन से विस्थापित होने पर लोग मानसिक रूप से टूटे हुए नजर आते हैं। जो भी सरकारी अधिकारी उनकी मदद करने की कोशिश करता है उसे राजनीतिक और शारीरिक रूप से रोक दिया जाता है। तब वह केवल असहाय होता है।उपरोक्त उपन्यास का पात्र आनंद इसका मिसाल है। विकास के नाम पर लोगों को बेदखल करने और उन्हें ऐसी जीवन स्थितियों में धकेलने की प्रथा, जिनमें वे कभी फिट नहीं हो सकते, आज भी जारी है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका इस दुखद स्थिति पर सवाल उठाती है।

बाँध बनने से आदिवासियों की जमीन बाढ़ में डूब जायेगी। इसलिए उन्हें अपनी जमीन छोड़कर कहीं और जाना पड़ा। सरकार उन्हें पुनर्वास का वादा देता है। लेकिन राजनेताओं की मदद से भूमाफिया आदिवासियों की ज़मीन हड़प लेती है और मनमाने दामों में बेच लेता है। कमल जैसे लोग आदिवासियों को इससे बचाने और उन्हें शांतिपूर्ण जीवन देने की कोशिश कर रहे हैं। वे राजनेताओं से टकराते हैं, लेकिन बहुत कम प्रभाव डालते हैं। अंततः सरकार आदिवासियों के जीवन को नारकीय बनाने की जिम्मेदारी उनके सिर पर डाल देती है। आनंद एक ईमानदार अधिकारी हैं, लेकिन उन्हें अक्सर आदिवासियों की दुर्दशा असहाय रूप से देखनी पड़ती है। इससे उसे बहुत दुख होता है। उपरोक्तउपन्यास में सरकार, भूमाफिया, पत्रकार, एनजीओ के नियत को रेखांकित करता है।आदिवासियों की विवशता का खुला बयान भी यहाँ दर्शाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में विस्थापन के विभिन्न स्वरूप विद्यमान हैं। वे निम्नलिखित हैः-

आदिवासियों को विस्थापित करनाः जब आनंद को डी.एफ.ओ के रूप में नौकरी प्राप्त हुआ, वह बेहद खुशी के साथ नौकरी में भर्ती हुआ। मगर डी.एफ.ओ की नौकरी उतना आसान नहीं रही। बाढ़ के कारण लोगों को अपनी जगह छोड़कर जाना पड़ता है। अगर नहीं जाए तो उनपर जबरदस्ती दिखाता है। सुधा इसके बारे में आनंद से बताती है- फिर वही शब्द व्यवस्थापित। चिढ़कर सुधा कहती, बिलकुल गलत। लोग चीज़ें है क्या कि उन्हें, उठाकर यहाँ-वहाँ रख दिया? जैसे घर का सामान?"[1] यहाँ अधिकारीवर्ग विस्थापन के सिलसिले में लोगों को चीज़ें समझते हैं। उन्हें अपनी मर्जी के अनुसार विस्थापित किया जाता है।

आदिवासी किसी के कठपुतली नहीं। वे भी मानव हैं। अपनी जन्म भूमि से उन्हें जबरदस्ती हटाने पर वे प्रतिरोध करते हैं। बाहर खाली स्तंभ और एक चौखट ने जिसमें उड़ती चिड़ियों के पंख-सा निशाँ फँसा था, जमीन को जंगल ठहराया। एक विशाल कागज़ पर। सबके अधिकारों का अभिलेख। सचाई का सबसे बड़ा साक्ष्य। तिवारी बाबू ने उस अदृश्य जंगल में उलझे स्याह पंख को अपनी उँगली के नीचे दबोचा। यहाँ जमीन का पट्टा नहीं दिया जा सकता था। यह औरत का नाजारत कब्ज़ा था और उन बाकी लोगों का भी। सरकारी जमीन की सबसे सुरक्षित स्वरूप पर। जंगल पर। बाकी लोग तो फिर भी ठीक थे। कम से कम नोटिस से डरते थे। चुप रहते थे। पर औरत की ढिठाई की इद नहीं थी। बेदखली नोटिस को ही जमीन पर कब्जे के अधिकार का प्रमाण बना बैठी थी। वह और उसका बेटा। दोनों ही परेशान करते थे।"[2]

यदि एक दिन उन्हें अपनी भूमि छोड़ने के लिए कहा जाएँ जहाँ वे इतने सालों से रह रहे हैं, तो वे इसे सहन नहीं कर सकते। ताकतवर जरूर सवाल उठाता है। यहाँ भी वही हुआ। इसलिए अधिकारियों का कहना है कि माँ-बेटे अहंकारी हैं और उन्हें सरकार का कोई डर नहीं है, जो इस बात पर अड़े हैं कि वे अपनी ज़मीन नहीं छोड़ेंगे। अतः इस स्थिति में भी सरकार विवशता-वश विस्थापित होनेवालों का दर्द न देखते हैं। उपरोक्त उपन्यास में अपने नियमों पर दृढ रहनेवाली सरकारी कर्मचारियों को देख सकते हैं।

विकास देश के लिए सबसे वांछनीय है। लेकिन इसके नाम पर आम लोगों को परेशान करना और डराना उचित नहीं। उपन्यास के नायक आनंद इस बात को समझता है। मगर वह सरकार कर्मचारी होने के कारण सरकारी नियमों को तोड़ नहीं सकता है। उसे सवाल किये बिना पालन करना पड़ता है। इसलिए आदिवासियों के आँसुओं और विनती को हमेशा अनदेखा करना पड़ता है। मगर घर से दखेलते ही बूढी औरत अपनी जमीन का पट्टा पाने के लिए आनंद के गेस्ट हौस के वरामदे में अपनी सामग्रियों के साथ रहने आती है। पहले आनंद उसे वहाँ से हटाने का मार्ग सोचता है। मगर वह औरत विवशतापूर्व चेहरा असहाय बनाता है। क्योंकि भूमि के नाम पर संघर्ष करने के कारण उसका एकलौता बेटा खोना पड़ा। सरकार ने उन्हें आतंकवादी करार दिया और जेल में डाल दिया। और एक बार जेल में डाल दिए तो कभी भी वह व्यक्तिबाहर नहीं आ सकता है। आनंद पता लगता है कि सरकार के खिलाफ नारे लगाने वाले और हड़ताल का नेतृत्व करनेवाले कई युवाओं को इसी तरह जेल में डाल दिया गया। इससे कई परिवार बर्बाद हो गए हैं, और उनके परिवार अपने बच्चों के वापसी का इंतज़ार कर रहे हैं। लेकिन उनकी सारी उम्मीदें धराशायी हो जाती हैं और उन्हें सरकार द्वारा निर्धारित नई जगह पर जाना पड़ता है। अतः 'विस्थापित' में आदिवासी लोगों की दुर्दशा और उनपर शासक वर्ग के अत्याचार का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया गया है।

मानसिक विस्थापन : जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर जबरन विस्थापित होता है तो यह व्यक्ति की मानसिकता को प्रभावित करता है। क्योंकि उनके मन नई जगह को स्वीकार नहीं कर पाता और सालों से गुज़री पुरानी जगह की यादें उनके मन में बनी रहती हैं तो यह उनके दिमाग पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसे मानसिक विस्थापन कहता है। सुधा के पिताजी कॉलेज प्रोफेसर थे। सेवानिवृत्ति के बाद भी यह कॉलेज के ही मकान में परिवार के साथ रहते थे। उनके पिताजी कॉलेज को खूब प्यार करता है। इसलिए हर दिन की तरह सेवानिवृत्त होने के बाद भी बच्चों को पढाने जाते थे। उनके सहकर्मचारियों को भी इससे कोई एकताज़ नहीं था। उन्हें भी उनके साथ काम करना अच्छा लगता था। मगर अचानक नए प्राध्यापक के आगमन से कॉलेज में कई परिवर्तन फटा-फट फूट निकला। इससे ज़्यादा नुक्सान सेवानिवृत्त अध्यापकों के घरों को हुआ। "... पर नये प्राचार्य का कहना था कॉलेज के मकान कॉलेज में काम करने से था। काम ख़त्म। अधिकार ख़त्म। यह पढ़ने की जगह है। पेंशनरों का अड्डा नहीं। नये प्राचार्य कम उम्र में प्राचार्य बन गए थे। सत्ता की गर्मी में उन्हें नहीं नज़र आतें थे झुकते कंधे , धुंधलाते दिन और धुंधलाती दृष्टि, उजाड़ होते बगीचे की अकेली कुर्सी, बिना कुछ करे थकता समय और लम्बे होते दिनों में छोटी होती उम्र।"[3]

वास्तव में सेवानिवृत्ति के बाद अध्यापकों को कॉलेज के बाहर जाना चाहिए था। मगर कोई भी अध्यापक कॉलेज के काटेज छोड़कर बाहर नहीं गया। क्योंकि सालों से ऐसी परंपरा चली आ रही है। अचानक काटेज खाली करने की सूचना मिलने पर सब परेशान हो जाते हैं। सुधा के बाबुजी और माँ भी इस खबर से उदास हो जाते हैं।

"पर' माँ ने कहा, 'इसका कोई नियम होता है। ऐसे कैसे सबको बेदखल कर सकते हैं। कितने समय से लोग ऐसे रहते आ रहे हैं।"

"नियम नहीं है।"बाबुजी ने कहा, यह रिवाज़ है। लोग रिटायर करते और जहाँ रहते थे वहीं रहते जाते। कॉलेज उनसे किराये की जगह कॉलेज कल्याण कोष में किराये से थोडा बहुत बढाकर राशि जमा कराता। उसकी रसीद एक दस्तूर को काबूल करती है अधिकारी का अभिलेख नहीं बनती।"

"इतने दिन जो जहाँ रहा उसका वहाँ कोई अधिकार नहीं।" माँ ने बहस की।

"जो जगह उसकी कभी नहीं थी उसपर अधिकार कैसा?"

"जगह पर अधिकार बसाने से होता है।"

"बनाये हैं। बसाये नहीं। जो लोग इनमें रहे हैं उन्होंने बसाये हैं। उनके बिना यह सब खाली है। खालीपन पर कैसा अधिकार?"[4]

सुधा के बाबुजी और माँ आपस में बहस करते हैं। मगर उन्हें नए इलाके में स्थानांतरण करना पड़ता है। वे नए 'प्लाट' में पुराने सामान भरकर पुरानी जगह जैसा दिखाने की कोशिश की जाती हैं, मगर तब भी उनके मन कॉलेज और पुराने कॉटेज के चारों ओर चक्कर काटते हैं। यहाँ मानसिक विस्थापन का ज्वलंद स्वरूप नज़र आता है।

दूसरी तरफ देखें तो आनंद शंकर की टूटी मानसिकता का चित्र देख सकते हैं। सुधा और अशोक बहुत अच्छे दोस्त रहे। वास्तव में दोनों एक दूसरे को चाहता है। लेकिन किसी ने खुलकर इसपर बात नहीं की। इसलिए दोनों अपने इश्क को दिल में छुपाकर दोस्ती निभाती रहती है। सुधा समाजशास्त्र में अनुसंधान करती है। दोनों अलग-अलग जगहों में रहने पर पूरी खबर मिलाकर एक दूसरे को चिट्ठी लिखते थे। अचानक कमल का आगमन और कमल के साथ सुधा का खुलमिलना आनंद को पसंद नहीं आता। 'अनुसंधान' नामक एन जी ओ का मुखिया, कमल आदि आदिवासियों को विस्थापन से बचाने का प्रयास करते हैं। वे प्रशासनिक अधिकारियों के खिलाफ लड़ाई करते हैं। सुधा भी उनके संघर्ष में भाग लेती है। आनंद उसे इससे रोकने की बहुत कोशिश करता है। लेकिन वह कमल के साथ संघर्ष का नेतृत्व करती है। कमल की संस्था में काम करने के बाद बाँध के विरोध के बाद?"वह मुस्करा दी, "नहीं। उस सबके साथ-साथ। सोचती रहूँगी। तुम भी सोचना।" उसके अंदर दर्द की हल्की दरार-सी फूटी। कमल। विरोध के लिए स्वतंत्र। सुधा के साथ किताब लिखने के लिए स्वतंत्र। सुधा के साथ समय गुज़ारने के लिए स्वतंत्र। उसे लग रहा था बाँधा उसके चारों ओर कब का खड़ा हो गया है और उसका सबसे महत्वपूर्ण समय डूबकर न जाने कहाँ बह चूका है।"[5] यहाँ बाँध के विस्थापन से जूझ रहे आनंद के सामने कमल और सुधा के अचानक आ जाने के कारण वह मानसिक रूप से विस्थापित हो जाता है।

वैसे ही आनंद शंकर मानसिक विस्थापन का शिकार है। अपने घर और प्रियजनों को छोड़कर उन्हें कोसों दूर आकर नौकरी करना पड़ा। सरकारी कर्मचारी होने के कारण सरकार जहाँ भेजता है, वहाँ जाना पड़ता है। "...वह अकेला नहीं रहना चाहता था। अकेले रहने में बहुत सारे विरोध खड़े हो जाते। कंधे पर लटकी पोटली और मेज पर खिंचे नक़्शे। नक़्शे पर बनती बिगड़ती लकीरें और मिटाते गाँव घर। कहीं उमड़ती नदी, कहीं सूखता पानी। कोई उसे उसके अकेलेपन से बाहर निकालने के लिए नहीं था।"[6] मानसिक विस्थापन का शिकार होने के कारण आनंद शंकर अक्सर काम निपटाकर छुट्टी लेकर घर जाया करता है।

विकास योजनाओं से उत्पन्न विस्थापनः तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त करने के लिए भारत ने औद्योगिक विकास योजनाएँ, सड़कें, खदानें, विद्युत शक्ति उत्पादन केंद्र और नये शहर आदि के निर्माण में भारी मात्रा में धन लगाए। ऐसी विकास योजनाओं के फल मिलने के लिए भूमि का बड़ी तादाद में अभिग्रहण ज़रूरी था जिसके कारण मानवराशि का विस्थापन प्रारंभ हो गया। भारत में विकास से होने वाले विस्थापन में प्रमुख कारण बाँध निर्माण से उत्पन्न विस्थापन से है। बांध निर्माण के कारण विस्थापित लोगों की संख्या दो से चार करोड़ के बीच है। बांध निर्माण से लोगों को कई प्रकार की मुसीबतें झेलनी पड़ीं।

विकास योजनाओं के नाम पर बांध बनाने से उत्पन्न परेशानियों में पड़े आदिवासियों का हृदयस्पर्शीय स्वरूप 'विस्थापित' उपन्यास में पाया जाता है। बाँध बनाने का निर्णय लेते ही लोगों को विस्थापित करने का आदेश देते हैं। जो लोग अपनी ज़मीन छोड़कर नहीं जाते हैं, उन्हें धमकी से भगाने की कोशिश करेंगे। जो लोग सरकारी निर्णय के खिलाफ आंदोलन चलाते हैं, उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज देते हैं। 'विस्थापित' उपन्यास आदिवासियों की इन सभी परेशानियों को अंकित करने में सफल हुआ है। "बस स्टैंड पर उसे लोग दीखते। इक्के-दुक्के। समूह में। अपना समूचा जीवन चुपचाप एक छोटी पोटली में बाँध, कंधों पर लटकाये। निर्भाव। जीवन के अथक यात्री न कहीं से आना, न कहीं का जाना। क्षीण प्रवाह सा लोग का प्रस्थान। इनके पालायन का कोई मौसम नहीं। उसे अब

दीख रहा था ?"[7] यहाँ मुसीबतों में फंसे बिना परिवारक के साथ सरकार द्वारा निर्धारित नई जगह की ओर लोग पलायन करता है। लोगों की इस तरह चुप-चाप पलायन देखकर आनंद शंकर का दम घुटने लगता है। लेकिन वह अस्सहाय खड़ा होता है। "विस्थापित। रातोंरात गाँव और उनमें रहनेवाले लोगों के नाम डूब गए थे। खत्म हो गए थे। रातोंरात उनकी अस्मिता डूब गई थी। सबका अब एक ही नया नाम था। विस्थापित । एक सरल सामान्य समरूप नाम। जैसे मरने के बाद आदमी के इतने पर्याय कुछ निजी कुछ और सार्वजनिक उसे छोड़ देते हैं। उसकी पहचान सिर्फ शव के रूप में होती है।"[8] एक बार अपनी भूमि से बेदखल हो जाने पर कभी भी वहाँ लौट नहीं सकता। विकास हो जाए या नहीं, वह भूमि हमेशा के लिए सरकारी हिस्सा बन जाएगा।

विकास का नाम सुनते ही बाहर से लोग कम पैसों से आदिवासियों से ज़मीन खरीदता है। गरीब आदिवासी इन पूँजीपतियों की बातों में फंस जाता है और उनके द्वारा दिए छोटे रकम में सबकुछ भूल जाता है। जब रकम ख़त्म हो जाता है, तभी अपनी गलती का एहसास होता है। सुशीला घर गुज़ारने के लिए दूसरों के घर में काम करने जाती है। वह अपनी छ्ल में खो गए खेतों के बारे में कमल और सुधा से कहती है "खेत सबने बेच दिए थे। कालोनियों बनाने की तैयारी शुरू। जो छोटे किसान भी थे उन्होंने ज़मीन बेच दी थी। पानी के दाम। जितना पैसा मिला कब का ख़त्म हो चुका था। अब सब कर्ज में डूब थे। सुशीला की माँ का पतला चिंतित चेहरा। सुशीला का बापू ज़मीन बेचकर शहर चला गया। वहाँ कुछ नहीं मिला। तब एक आदमी से पैसा लिया और बदले में उससे सुशीला की शादी तय कर दी।"[9] यहाँ विकास योजनाओं के पीछे छिपी अत्याचारों का पर्दाफ़ाश हुआ है।

निष्कर्ष : विकास मानवीय जीवन का मूलभूत ज़रूरत है। लेकिन आज की परिस्थिति में विकास एक ऐसा शब्द है जो विवादास्पद और आतंककारी स्वरूप धारण कर चूका है। विकास के नाम पर कई योजनाएँ बनती हैं लेकिन यह सब सरकार और सभ्य समाज के लिए है, जनजाति समूहों को अपने लाभ का माध्यम बनाने का एक षड्यंत्र मात्र है। 'विस्थापित' उपन्यास हमें आदिवासियों की विविध समस्याएँ जैसे बाँध-निर्माण और विस्थापन को उभारने के साथ राजनेताओं, पत्रकारों, एनजीओ तथा स्थानीय भूमाफियाओं के नियत को भी रेखांकित करता है। आदिवासियों की समस्या अपनी ज़मीन और घर के बदले घर और ज़मीन पाने की है साथ ही अपने जड़ों से जुड़े रहने की भी है। बदलते परिस्थितियों से विचलित आदिवासी समूह का फायदा तथाकथित सभ्य समाज उठाता है। अमिता शर्मा उपर्युक्त उपन्यास द्वारा आदिवासियों की दुर्दशा का करुणात्मक चित्र खींचता और सभ्य जनता की चालाकियों का पर्दा-फाश करने की कोशिश करती है।

संदर्भ संकेत

1. विस्थापित- अमिता शर्मा , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, -पृ.सं. 20-21
2. वही -पृ.सं. 23
3. वही -पृ.सं. 50
4. वही -पृ.सं. 78
5. वही -पृ.सं.113
6. वही -पृ.सं. 115
7. वही -पृ.सं. 105
8. वही -पृ.सं. 104
9. वही -पृ.सं. 68

संदर्भ ग्रन्थसूची

1. विस्थापित- अमिता शर्मा , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
2. समकालीन हिंदी उपन्यासों में विस्थापन- डॉ रूबी एलसा जेकब,विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2017
3. विस्थापन का साहित्यिक विमर्श- अचला पाण्डेय, लोक भारती प्रकाशन,नई दिल्ली, 2019
4. आदिवासी विकास से विस्थापन -रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

पीडीएफ , केरल विश्वविद्यालय
हिंदी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस, तिरुवनंतपुरम

स्वयं प्रकाश की कहानियों में पर्यावरण

दिव्या जी आर

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर प्रकृति को विशिष्ट स्थान दिया गया है। साहित्यकारों ने प्रकृति के सौंदर्य, महत्व और मानव के साथ उसके संबंध को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है। प्राकृतिक संपत्ति के उपभोग की प्रवृत्ति आज इतनी बढ़ गई है कि इसका बुरा प्रभाव प्रकृति पर पड़ रहा है। जल, जंगल, वायु, जमीन, आकाश जैसे प्रकृति प्रदत्त चीज़ों का हमने इतना दुरुपयोग किया है कि ये सारे आज संकट में आ गए हैं। यह साहित्यकारों को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाता है। हिंदी साहित्य में स्वयं प्रकाश एक ऐसे महत्वपूर्ण कथाकार हैं, जिन्होंने समाज, राजनीति, मनुष्यता और पर्यावरण जैसे विविध विषयों को अपनी कहानियों का हिस्सा बनाया। उनकी कहानियों में पर्यावरण केवल पृष्ठभूमि का हिस्सा नहीं है, बल्कि एक सक्रिय विषय के रूप में सामने आता है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि पर्यावरण की उपेक्षा केवल प्रकृति के लिए ही नहीं, बल्कि मानव समाज के लिए भी विनाशकारी सिद्ध हो सकती है।

समकालीन हिंदी कहानी की विशिष्ट पहचान रखनेवाले साहित्यकारों में एक है श्री स्वयं प्रकाश। स्वयं प्रकाश का सामाजिक सरोकार बहुत ही व्यापक और बहुत ही विविधतापूर्ण है। कथाकार के रूप में उनकी नजर चारों तरफ घूमती है। जैसे ही कोई विसंगति या असंगति नज़र आती है वे उन्हें कहानी में ढाल देते हैं। उनकी रचनाएँ पारिस्तिथिक परिप्रेक्ष्य से भरी पड़ी है। उनकी कहानियों में प्रकृति के साथ मानव के संबंधों का विविध और गहरा चित्रण किया गया है। स्वयं प्रकाश की रचनाओं के ज़रिए प्रकृति के महत्व तथा मनुष्य और प्रकृति के बीच की अटूट संबंध की आवश्यकता का एहसास होता है। पर्यावरण आज के युग की सबसे ज्वलंत समस्या बन चुका है। वनों की अंधाधुंध कटाई, बढ़ता प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, और प्राकृतिक संसाधनों का अति उपयोग मानव जीवन के लिए खतरा बन गया है। ऐसे समय में साहित्यकारों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। समकालीन हिंदी साहित्य में स्वयं प्रकाश जैसे कथाकारों ने पर्यावरण विषय को गंभीरता से उठाया है और अपनी कहानियों के माध्यम से समाज को चेताने का कार्य किया है।

स्वयं प्रकाश समकालीन हिंदी कथा साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक, राजनीतिक, और पर्यावरणीय सरोकारों से जुड़ी होती हैं। उन्होंने उन मुद्दों को उठाया है जो सीधे आम जनता के जीवन और प्रकृति से जुड़े हैं। उनके लेखन में पर्यावरणीय असंतुलन, विकास की अंधी दौड़, जंगलों का नाश और पारिस्थितिक विनाश जैसे विषय स्पष्ट रूप से उभरकर आते हैं। स्वयं प्रकाश की कहानियों में प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है। वृक्ष, पशु, नदी ,पहाड़ आदि प्रकृति के विभिन रूपों का वर्णन कहानियों को सुंदर बनाने के साथ-साथ प्रकृति के महत्व और उसके साथ जुड़ने की आवश्यकता पर बल देता है। स्वयं प्रकाश जी की 'बलि' नामक कहानी इसका एक सशक्त उदाहरण है।

'बलि' में जंगल की हरियाली और वहाँ रहने वाले लोगों का शांतिपूर्ण जीवन चित्रित किया गया है। जैसे ही शहर और कारखाने वहाँ प्रवेश करते हैं, प्रकृति का विनाश आरंभ हो जाता है। पेड़ काट दिए जाते हैं, मशीनों और भवनों की भरमार हो जाती है, और प्रदूषण बढ़ जाता है। यह कहानी विकास के नाम पर पर्यावरण को किए जा रहे नुकसान को उजागर करती है। कहानी के प्रारंभ में एक जंगल का वर्णन देख सकते हैं जिससे जंगल की हरियाली का पता चलता है। लोग जंगल के साथ संबंध रखते हुए जीवन व्यतीत करते थे । लेकिन इसके बीच सब कुछ बदल गया। वहाँ शहरी लोगों का आगमन हुआ जिससे जंगल की हरियाली का नाश होने लगा- "देखते ही देखते वहाँ एक कारखाना बन गया । पेड कटे । उनकी जगह मकान खड़े हो गए। भूमि समतल कर दी गई। बड़ी-बड़ी मशीनें, मकान और मकान के बीच भी सड़क। सारी जिंदगी बदल गई।"[1] प्रकृति में आये परिवर्तनों को इन पंक्तियों से समझ सकते हैं। जंगल की सुंदरता अपने आपको सभ्य तथा आधुनिक कहनेवाले राक्षसों के हाथों गायब होने लगी। बडे-बडे कारखाने और मकानों के लिए सारी भूमि समतल कर दी गयी। इसके साथ प्रदूषण की समस्या भी आने लगी है।

जंगल का दाह स्वयं प्रकाश जी की ऐसी एक कहानी है जिसमें यह बताया है कि मानव के आगमन से जंगल का नाश कैसे होता है। 'जंगल का दाह' कहानी के मामा सोन जैसे पात्र पारंपरिक और प्रकृति से जुड़े जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। किंतु जब राजा अपने पुत्र के लिए जंगल में महल बनवाता है, तो वन्य जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह कहानी दिखाती है कि सत्ता और सुविधा के लिए किस तरह प्रकृति की उपेक्षा की जाती है। इस कहानी का मुख्य पात्र है

मामा सोन। वे जंगल में रहते थे और वनवासियों के बच्चों को तीर-कमान चलाना सिखाते थे। वे अपने धनुष और बाण भी स्वयं बनाते थे। हर वनवासी अपने बच्चों को तीर-कमान चलाना सिखाने के लिए मामा सोन के पास भेजते थे। लेकिन वहाँ के राजा जब अपने बेटे को मामा सोन के पास शस्त्र अभ्यास के लिए भेजते हैं तो पूरे जंगल का वातावरण नष्ट-भ्रष्ट होने लगता है। पहले वह जंगल बहुत सुंदर था। लेकिन राजा ने बेटे की सुख-सुविधा के लिए जंगल काटकर वहाँ दो महल - एक राजकुमार के लिए और दूसरा मामा सोन के लिए- बनवाए । इसके कारण जंगल में अशांति फैल गई, जंगली जानवरों को अपना आवास- स्थान नष्ट हो गया- "इन अभूतपूर्व गतिविधियों से जंगल की शांति भंग होने लगी ,पेड़ काटने लगे। पानी हवा दूषित होने लगे ।पशु पक्षी दूर भागने लगी। छिपने और डरने लगे।"[2]

स्वयं प्रकाश की कहानियाँ प्रकृति के वैविध्यपूर्ण चित्र से भरी हैं। उनकी कहानियों में वृक्षों की हरियाली, पशुओं की चंचलता, नदियों की कलकल, पहाड़ों की ऊँचाई, समुद्र की गहराई आदि का वर्णन है। इन विविधताओं का वर्णन न केवल कहानियों को सुंदर बनाता है, बल्कि ये हमें प्रकृति के महत्व और उसके साथ जुड़ने की आवश्यकता का भी एहसास कराता है। स्वयं प्रकाश की कहानियों में प्रकृति का प्रतीकात्मक प्रयोग भी महत्वपूर्ण है। वे वर्षा, सूखा, पेड़, पक्षी, नदियों आदि का प्रयोग केवल दृश्य प्रभावों के लिए नहीं, बल्कि मानव संवेदनाओं और सामाजिक यथार्थ को दर्शाने के लिए करते हैं।

'बिछुडने से पहले' स्वयं प्रकाश की एक ऐसी कहानी है जिसमें विकास के नाम पर प्रकृति पर होनेवाले मानवीय हस्तक्षेप को प्रस्तुत किया गया है। 'बिछुड़ने से पहले' में खेत और पगडंडी के संवाद के माध्यम से सड़क निर्माण के कारण पेड़ों की कटाई और प्रदूषण की ओर इशारा किया गया है। यह संवाद भावनात्मक रूप से पाठकों को प्रकृति के पक्ष में सोचने के लिए प्रेरित करता है। कहानी 'खेत और पगडंडी' के बातचीत के रूप में है। पगडंडी को काटकर 8 किलोमीटर की एक सड़क बनाई जाती है तो इन दोनों के बीच संवाद होता है - "तेरी कौन सी सद्गति होने वाली है? यहाँ ये ट्रक लारी दौड़ेंगे, धूल उड़ाते, धुएँ के बादल छोडते तो तेरा क्या होगा।"[3] पगडंडी सडक बन जाएगी तो मोटर गाड़ियाँ दौड़ने लगेंगी जिससे धूल उड़ेगी। साथ-साथ गाडियों से धुएं भी अंतरीक्ष में फैल जाएगा । कहानीकार ने विकास के साथ होनेवाले प्रदूषण की ओर यहाँ इशारा किया है।

सड़क बनाने के लिए कई पेड़ों को काटना पडता है जो प्राकृतिक असंतुलन का कारण बन जाता है। स्वयं प्रकाश जी ने खेत के मुँह से बतलाया है- "जिस पेड़ की तू बात कर रहा है वो रहेगा भी? ऐसे ही खड़ा रहेगा? राम का नाम ले। सड़क बनेगी बाद में, पहले तो विचार इन पेड़ों की ही हत्या होगी।"[4]

स्वयं प्रकाश जी प्रकृति और पर्यावरण के महत्व तथा मनुष्य को प्रकृति के साथ जुड़कर रहने की आवश्यकता पर ज़ोर देनेवाले महान साहित्यकार है। प्रकृति से हमें बहुत कुछ सीखना है जिससे हम अपने जीवन को अधिक सुंदर और अर्थपूर्ण बना सकते हैं। पारिस्थितिक संरक्षण के महत्व को समझने में स्वयं प्रकाश की रचनाएं सहायक हैं। स्वयं प्रकाश की कहानियाँ केवल साहित्यिक कृतियाँ ही नहीं, बल्कि एक चेतावनी हैं। वे हमें याद दिलाती हैं कि प्रकृति से जुड़कर ही जीवन संतुलित और सुरक्षित रह सकता है। पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान केवल तकनीकी विकास से नहीं, बल्कि संवेदनशीलता, जागरूकता और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना से संभव है। स्वयं प्रकाश जैसे रचनाकार हमें यह सिखाते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ, सुधार और चेतना का माध्यम भी हो सकता है।

स्वयं प्रकाश की कहानियाँ हमें यह समझाने का प्रयास करती हैं कि पर्यावरण और समाज के बीच एक गहरा संबंध है। जब हम प्रकृति का दोहन करते हैं, तब वास्तव में हम अपने ही भविष्य को खतरे में डालते हैं। उनकी कहानियाँ पर्यावरणीय चेतना को जागृत करती हैं और पाठकों को एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए प्रेरित करती हैं। इस प्रकार, स्वयं प्रकाश का साहित्य न केवल सामाजिक आलोचना का माध्यम है, बल्कि वह पर्यावरण संरक्षण का संदेश भी बखूबी देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. संधान -स्वयं प्रकाश, (बलि) वाणी प्रकाशन, पहला संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या:50
2. संधान -स्वयं प्रकाश, (जंगल का दाह) वाणी प्रकाशन,पहला संस्करण 2006,पृष्ठ संख्या:63
3. एक कौड़ी दिल से -स्वयं प्रकाश (बिछुड़ने से पहले) , संपादक -नीरज खरे, प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या:157
4. एक कौड़ी दिल से -स्वयं प्रकाश(बिछुड़ने से पहले), संपादक -नीरज खरे, प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या: 158

शोध निदेशक : प्रो(डॉ) ज्योति एन

शोध छात्रा

सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

'अंतिम सत्याग्रह' उपन्यास में गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव

डॉ उपेंद्र कुमार

आज़ादी भारतीय इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। इस घटना ने लगभग दो शताब्दियों से घिरे हुए भारतीय गुलामी की दासता एवं निराशा के बादलों को चीरकर चातुर्दिक नवीन आलोक बिखेरने का कार्य किया। आज़ादी के के संघर्ष को हिंदी के अनेक उपन्यासकारों अनेक दृष्टिकोण से अपने उपन्यास में इस घटना को अभिव्यक्त किया है। 'अंतिम सत्याग्रह' सन 1930 में महात्मा गाँधी द्वारा संचालित नमक आंदोलन पर आधारित प्रसिद्ध साहित्यकार राजेंद्र मोहन भटनागर का उपन्यास है। उपन्यासकार ने इसकी रचना सन् 2007 में सत्याग्रह के 100वीं और आजादी की पहली लड़ाई के 150वीं जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में की है। जहाँ सन 1857 का विद्रोह भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के खिलाफ संगठित प्रतिरोध की पहली अभिव्यक्ति थी, वही सन 1906 में गाँधी ने अन्याय के प्रतिरोध के लिए दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का आविष्कार किया था। जिसमें मनुष्य सत्य, अहिंसा और आत्मिक शक्तिके बल से शोषण और अत्याचार का प्रतिरोध करता है। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के सफल प्रयोग करने के बाद गाँधी ने इसका पुनः प्रयोग भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए किया जिसके परिणामस्वरूप सन 1947 में भारत को औपनिवेशिक दासता से मुक्ति मिली। राजेंद्र भटनागर का यह उपन्यास 1857 के हिंसात्मक विद्रोह और 1906 के अहिंसात्मक प्रतिकार के इतिहास के स्मृति-संयोजन का रचनात्मक परिणाम है।

यह उपन्यास नमक आन्दोलन के बहाने आजादी से पूर्व और आजादी के बाद उत्पन्न विडम्बनाओं, अपेक्षा-उपेक्षाओं, आशा-निराशाओं व राग-विरागों का सजीव समग्र अंकन करता है। इसकी कथावस्तु एवं रचना-प्रक्रिया के सन्दर्भ में उपन्यासकार लिखता है, "नमक सत्याग्रह के पीछे भी गांधीजी का मूलमंत्र था कि भारत आजादी की दिशा में आगे आ सके और तत्कालीन सरकार कंधे डालती नजर आये। मेरे मन में वही उहापोह था जो उस समय के विचारकों, राजनेताओं के मन में था। मैं साबरमती आश्रम गया। वहाँ रहा। अनुभूति करने तक रुका भी कि गांधीजी ने नमक को आन्दोलन का विषय क्यों चुना? जल के बाद नमक का ही नंबर आता है। मैं गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका में चलाये प्रथम सत्याग्रह से अपने को जोड़ने की कोशिश करने लगा। तब इसका नाम सत्याग्रह नहीं पड़ा था... तब के सच को भारत में हुए सत्याग्रहों में मैंने खोजा। खोजते-खोजते सन 1930 के सत्याग्रह की थाह लेने लगा।"[1]

इस उपन्यास का नायक भील नगारा है जो अपने जीवन के शुरुआती दौर में भाड़े पर हत्या करता है। परन्तु एक दिन भाड़े पर हत्या करनेवाला यह नगारा आश्रम में जिस संत की हत्या करने जाता है, उसी संत का शिष्य बनकर गांधीवादी सत्याग्रही हो जाता है। उपन्यासकार के अनुसार, " यह सत्याग्रह पर आधृत है- नमक आन्दोलन से जो सन 1930 में हुआ था। उस आन्दोलन का ऐसा चश्मदीद गवाह नगारा था। वह आजादी के बाद के सत्याग्रह का भी अकेला एक ऐसा भागीदार हुआ कि उसके बाद कोई अन्य सत्याग्रही उसके सामने खड़ा नहीं हो सका।"[2] आजादी के पश्चात् भी नगारा का मोह भंग नहीं होता। प्रतिबद्धता ही उसका धर्म है। आजादी के बाद अनेक लोगों के चेहरे और चरित्र बदले, परन्तु नगारा का चरित्र नहीं बदला। वह आज भी गन्दी बस्ती में रहता है, अन्याय, अत्याचार, असमानता के खिलाफ जागरूकता की लड़ाई लड़ता है और अपने प्राण भी देता है। उसके लिए सत्याग्रह ही सबसे बड़ा और अंतिम अचूक यार है। उसका संघर्ष ही उसका आत्मबल है। वर्तमान और अतीत के बीच पेंडुलम की भांति झूलता उसका जीवन सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलने वाले किसी भी व्यक्तिको प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता। इस उपन्यास की यही सबसे बड़ी प्रासंगिकता और सफलता दोनों हैं। इस प्रकार उपन्यासकार ने इस उपन्यास में समकालीन स्थितियों-परिस्थितियों, सामाजिक व राजनीतिक तंत्र के रग-रेशे को अत्यंत बारीकी के साथ रचनात्मक अभिव्यक्तिदी है।

यह उपन्यास एक ऐसे मनुष्य की कहानी का दस्तावेज है जो महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपने हिंसक गतिविधियों को छोड़ कर सत्याग्रही बन जाता है। प्रायः कहा जाता है कि मनुष्य अपनी परिस्थितियों का दास होता है, चाहे वह सामाजिक हो या राजनीतिक, आर्थिक या सांस्कृतिक। मनुष्य इन परिस्थितियों में रहकर और इससे

संघर्ष करते हुए ही अपने जीवन को सही दिशा में ले जा सकता है। अर्थात परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप मनुष्य के जीवन-शैली में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। इस उपन्यास का नायक नगारा भी एक ऐसा ही चरित्र है जो अपने जीवन के प्रारंभिक काल से इन परिस्थितियों की मार झेलता है और उससे संघर्ष भी करता है। इस संघर्ष में उसकी पत्नी धतुरी का कम योगदान नहीं है जो आजीवन उसका साथ देती है। नगारा कोई जन्मजात हत्यारा नहीं था और न ही किसी की हत्या करना चाहता था। वह तो परिस्थितियों का दास मात्र था जो उसे हत्या करने के लिए मजबूर करती है। उसने हत्याएँ अवश्य की हैं, "लेकिन वह नहीं जानता कि क्योंकि वह जानना भी नहीं चाहता। वह हत्या नहीं करता तो क्या करता ! हत्या उसका व्यवसाय बन गया था। व्यवसाय व्यवसाय ही होता है। उसमें अच्छा-बुरा नहीं सोचा जाता। उसमें हानि-लाभ पर विचार होता है, जिसमें लाभ नजर आता है, वही किया जाता है।"[3] इस प्रकार नगारा एक व्यावसायिक हत्यारा होता है जिसे यह मालूम नहीं होता कि आखिर वह हत्या क्यों करता है और उसे जो भी कोई पैसा देता है उसका काम करना अपना धर्म समझता है। लेकिन अचानक ही उसके जीवन में एक ऐसी घटना घटती है जिससे उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है और हिंसा का रास्ता सदैव त्याग कर एक अहिंसक गांधीवादी सत्याग्रही बन जाता है और उसे आजीवन निभाता है। इसके जीवन-शैली में आए परिवर्तन के कारणों को जानने के लिए इस उपन्यास की ही एक चरित्र लेखिका वंदना जब नगारा से पूछती है, "आप पहले क्या थे और बाद में एकदम बदल गए। – कोई तो कारण रहा होगा। – जीवन का अचानक बदल जाना असाधारण घटना है। बहुत कम, दूसरे शब्दों में कहूँ तो हजारों-हजार में शायद कभी किसी के जीवन में ऐसा चमत्कारिक बदलाव आता है– आप उनमें से एक है।"[4]

वंदना के इस जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए नगारा ने कहा, "बिटिया, मैं दूसरों के संकेत पर, अच्छी रकम बटोरने के बाद, चाहे जिस किसी की हत्या कर दिया करता था– मुझे हत्या करने से मतलब था, उस आदमी से कतई नहीं, जिसकी मुझे हत्या करनी होती थी।"

'ऐसा आप क्यों करते थे? क्या मिलता था इससे आपको?– आप इतने क्रूर और निर्दय क्यों थे?–'

'मेरे सामने कोई ऐसी परिस्थिति नहीं थी। मुझे बदला भी किसी से नहीं लेना था। – मैं ख़ास कद-काठी का तगड़ा जवान था। पहली हत्या इसी बात को लेकर हुई कि कौन दादा है वह या मैं– द्वंद्व युद्ध हुआ। वह मेरे हाथों मारा गया-– मैं घबराया। लेकिन अनेक लोगों ने मदद की और मेरा कुछ नहीं हुआ– बस, फिर क्या था, कि मुझे उन लोगों के लिए काम करना पड़ा जिन्होंने मुझे बचाया था। रुपया भी मिलता और कानून की शरण भी। संरक्षण भी। रौब भी। बहुत कुछ जितनी जरूरत होती उससे बहुत अधिक।'

'आपको डर नहीं लगता था।' वंदना ने पूछा।

'नहीं– सब मुझसे डरते थे। मैंने उनके खून किए थे जो दिन-रात दूसरों का खून चूसते थे– खून कराए भी उन्होंने जो उन जैसे थे– मेरे ख्याल से उनका खून होना ही चाहिए था– यह बात बहुत बाद में समझ में आई, पर आई।'

"फिर अहिंसा कैसे अपना ली/ गया तो मैं हिंसा के लिए ही था। लेकिन…"[5]

लेकिन नगारा उस आदमी की हत्या नहीं कर पाता है और इसके विपरीत उस आदमी का शिष्य बन जाता है। उसे जिस व्यक्तिकी हत्या करने के लिए उसे पैसा दिया गया था और उसके बारे में कहा गया था कि सावधानी से यह काम करना क्योंकि वह आदमी बहुत खतरनाक है और वह व्यक्ति को सम्मोहित कर देता है। बड़े-बड़ों को वह अपनी मुट्ठी में कर लेता है। वह अपने को संत बनता है और मुर्ख जनता के हृदय में वास करता है। यह आदमी और कोई नहीं सदानंद आश्रम के सबसे बड़े संत और गांधीवादी सदानंद थे। अंततः नगारा संत सदानंद के सत्याग्रही व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाता है और हत्या करने का इरादा छोड़ देता है। सदानंद नगारा को समझाते हुए कहते हैं कि हिंसा वही करता है जिसके पास आत्मविश्वास की कमी होती है। हिंसा से भय और आतंक ही फैलता है। जब महात्मा गांधी के बारे में सदानंद, नगारा को बताते हैं तब और उत्साहित हो जाता है और सूत काटकर कपड़े बनाने के लिए तुरंत तैयार भी हो जाता है। सदानंद स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के खिलाफ गांधी बाबा के अहिंसक सत्याग्रह नीति के बारे में भी बताते हैं और उनके अमर सन्देश नगारा को सुनाते हुए कहते हैं, "हम मानते हैं कि स्वतंत्रता पाने का सबसे अधिक सार्थक साधन हिंसा नहीं है। इसलिए उसकी तैयारी के लिए हम ब्रिटिश सरकार से सब सम्बन्ध तोड़ देंगे और सविनय अवज्ञा व असहयोग आन्दोलन करेंगे जिसमें कर न देना भी शामिल होगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि हम सरकार को

अपनी स्वैच्छिक सहायता और कर देना बंद कर दें और भड़काने के बावजूद भी हिंसा का मार्ग न अपनाये तो अमानुषिक शासक का अंत निश्चित है। आप सत्याग्रही हैं। आपने पूज्यपाद गांधी बाबा के आशय को समझ लिया होगा। इसको आत्मसात करना है। – सत्याग्रही सबको अपना भाई मानता है। उसका विश्वास होता है कि प्रेम की शक्ति पत्थर दिल इन्सान को भी पिघला सकती है। प्रेम और समर्पण से वह शत्रु का हृदय भी बदल सकती है। – आप लोगों को अपने चरित्र से इसे सिद्ध करना है।"[6]

नगारा यह सुनकर आश्चर्य चकित रह जाता है कि उसके समक्ष महात्मा गांधी का पत्र पढ़ा गया और विदेशी सरकार की ज्यादती सामने लाई गई, लेकिन फिर भी सभी लोग शांत भाव से खड़े होकर सुनते रहे। किसी ने भी न तो कोई नारा लगाया और न ही जय-जयकार की। सत्याग्रही क्या और कैसा होता है नगारा को अब समझ में आने लगा था। नगारा सत्याग्रह-दर्शन को पूर्ण रूप से तब समझा जब गांधीजी ने नमक सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने की बात कही। गांधीजी नमक सत्याग्रह शुरू करने से पूर्व ब्रिटिश सरकार को एक पत्र लिखते हैं जिसमें सत्याग्रह आन्दोलन के औचित्य को दर्शाते हैं। गांधी का मानना था कि जीने के लिए जो नमक उसे चाहिए उसपर भी कर लगा दिया गया है। इसका सबसे अधिक बोझ आम आदमी पर पड़ता है। यह निर्धन व्यक्ति को तब और खलता है जब उसे याद आता है कि वह उस चीज को अमीर से अधिक खाता है। गांधी मानते हैं कि ब्रिटिश सरकार की इस अन्यायपूर्ण नीति का प्रतिकार अहिंसा के माध्यम से जनता करें। उनके अनुसार अहिंसा ही सरकार की संगठित हिंसा को रोक सकती है। यह अहिंसा असहयोग आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा के द्वारा ही प्रकट हो सकती है। इसके लिए गांधी नमक कानून के उल्लंघन के सन्दर्भ में ब्रिटिश सरकार को पत्र लिखते हुए कहते हैं, "मैं अपने आश्रम के साथियों के साथ आगे बढ़कर नमक कानून का उल्लंघन करूँगा। मैं निर्धन व्यक्ति के दृष्टिकोण से इस कर को सबसे अधिक अन्यायपूर्ण मानता हूँ। स्वतंत्रता आन्दोलन इस देश के गरीब आदमी के लिए है अतः मैं इसका प्रारंभ इस बुराई से ही करूँगा। आश्चर्य यह है कि हमने इस क्रूर एकाधिकार को इतने दिनों तक पनपने दिया। मैं जानता हूँ कि यह आपके हाथ में है कि आप मुझे गिरफ्तार करके इस योजना को पूरी नहीं होने दें। परन्तु मुझे उम्मीद है कि मेरे बाद हजारों-लाखों लोग अनुशासित ढंग से इस कार्य को पूरा करने हेतु आगे आयेंगे– यह पत्र धमकी के रूप में नहीं लिखा गया है अपितु यह एक सत्याग्रही का सामान्य तथा पुनीत कर्तव्य है।"[7]

नगारा गांधीजी के इस पत्र को देखकर सन्नाटे में आ जाता है। उसे पूरा विश्वास हो जाता है कि गांधी का यह रास्ता सही है और उनके इस आन्दोलन से अंग्रेजी सरकार नमक कर वापस ले लेगी।

नगारा के लिए एक सच्चा सत्याग्रही बनाना आसान नहीं था। इसके लिए मनुष्य में वि ास, आत्मवि ास तथा अभ्यास की आवश्यकता होती है। सत्य और अहिंसा में विश्वास पूरी तरह जमाना सहज नहीं होता, उसके लिए अभ्यास और सुदृढ़ मन चाहिए। मन को संकल्पी बनाने के लिए कठिन कर्म व त्याग की आवश्यकता होती है। ये तमाम बातें थी जिसे पाकर ही नगारा एक सच्चा सत्याग्रही बन सकता था। हालांकि नगारा को कभी-कभी ये सब बातें विचित्र भी लगती हैं। उसे यह भी बात समझ में नहीं आ रही थी कि हथियार रहते हुए बिना हथियार के मुकाबला कैसे कर सकते हैं। नगारा को ये सारी बातें आखिर में गांधी जी के साथ दांडी नमक आन्दोलन में भाग लेने के पश्चात् समझ में आती है। नगारा इस आन्दोलन का स्वयं प्रत्यक्षदर्शी था। उसने देखा कि तमाम जुल्मों और पिटे जाने के बाद भी सत्याग्रही बिना प्रतिकार के मौन होकर सहते जाते हैं। सत्याग्रह में कितनी शक्तिहोती है इस आन्दोलन से नगारा को जान चुका था। नगारा गांधी से इस कदर प्रभावित होता है कि मरने के लिए सदैव तैयार रहता। यह वही नगारा था जो दूसरों को मारता-फिरता था, आज वही मरने के लिए सदैव तैयार रहता है।

नगारा आजादी के पश्चात् भी अपने सत्याग्रही व्यक्तित्व को मिटने नहीं देता बल्कि सत्याग्रह का प्रयोग अनेक अवसरों पर करता रहता है। अब वह अपनी पत्नी धतुरी के साथ दलितों की कच्ची बस्ती में रहता है। लेकिन एक बात से लगातार परेशान रहता है कि गांधी ने जिस भारत का सपना देखा था और उसके लिए जो आजीवन संघर्ष किया, वही आजाद भारत में उनकी कोई कदर नहीं करता। नगारा जब अतीत में झाँकता है तो एक सुनहरी यादें दिखाई देती हैं परन्तु वही वर्तमान में घोर निराशा। वह सोचता है, "वह क्या बनने चला था, क्या बनकर रह गया। यह सब कैसे हो गया। नींव तो पुख्ता रखी थी, फिर भवन कैसे ढहने लगा क्या त्रुटि हुई कि जिसके लिए कुर्बानियाँ दी गई थीं, उसको सुफल नहीं

मिला। गांधी जी गरीबों के लिए आजादी चाहते थे लेकिन उसे ले उड़े अमीर। गरीब फिर गरीब रह गया। यह कैसे हुआ वह तो इसका प्रत्यक्षदर्शी है। फिर भी मौन है, कुछ कह नहीं पाता! चकित-सा आतंकित मन से उस सबका सामना नहीं कर पाता है, जिसका सामना उसने निहत्थे ही विदेशी सरकार से किया था।"[8]

नगारा को इस निराशा में भी आशा की किरणें दिखाई देती हैं। वह अपनी कच्ची बस्ती में रहकर ही गांधी बाबा के अधूरे कार्यों को पूरा करना चाहता है। वह भी ऐसी बस्ती में जहाँ लोग जानवरों से भी बदतर जिंदगी जी रहे होते हैं। नगारा अपनी सारी जमा पूँजी को इस कच्ची बस्ती में लगा देता है। फिर भी इन बस्तीवालों पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता है। फिर भी नगारा अपने कच्ची बस्ती में होने वाले अन्याय व अत्याचार का निरंतर प्रतिरोध करता है। अपनी बस्ती के ही काली को पुलिस द्वारा पिटे जाने का विरोध करता है। उसके विरोध करने पर पुलिस डंडे से पिटाई भी करती है, फिर भी नगारा सत्याग्रही की भांति अहिंसक प्रतिरोध जारी रखना नहीं भूलता है। वह कहता है, "बेटे, यह तूने मेरे नहीं, अपने बाप के डंडे लगाए हैं। इसमें तेरा दोष भी नहीं है। तू तो आजाद भारत में पैदा हुआ है, तुझे क्या मालूम कि इसको आजाद कराने में हमको क्या-क्या यातनाएँ दी गई थीं। कितनी बार हमारे हाथ-पाँव की हड्डियाँ तोड़ी गई! कम-से-कम तूने तो ऐसा नहीं किया। यह फर्क होता है फिरंगियों के और अपने राज में। अपना मारता है तो छाँह में डालता है।"[9]

बुढ़ापे में भी नगारा में ताकत की कमी न थी। उसमें साहस और त्याग अभी बाकी था। वह सत्याग्रही की तरह सब कुछ बर्दाश्त करता रहता है बिना किसी प्रतिशोध के। अंत में उसके सत्याग्रह के सामने पुलिस वाले को ही झुकना पड़ता है। नगारा अपनी बस्ती के तोड़े व उजाड़े जाने के खिलाफ भी सत्याग्रह करता है। बस्ती के लोगों को संबोधित करते हुए कहता है, "हमारा रास्ता अहिंसा का होगा। हिंसा मरते दम तक स्वीकार नहीं होगी। जानते हैं, अहिंसा ने ब्रिटिश जैसी सरकार को हिला दिया था। – हम मन से पवितर रहें। – हमें टूटना नहीं है। – हमारी दिक्कत है कि हममें धीरज नहीं, रहता, हाँ जल्दी घबरा जाते हैं और घबराकर हथियार डाल देते हैं। हमारे पास एक ही तो हथियार है-गरीबी– हम उसे भी– नहीं, नहीं भाइयों और बहनों, इस बार हम उस..."[10]

नगारा एक तरफ जनता को संबोधित कर रहा होता है तब तक दूसरी तरफ उसकी झोपड़ी जला दी गई। धीरे-धीरे पूरे बस्ती में आग लगाकर दी गई। नगारा चिल्ला-चिल्लाकर थक गया लेकिन उसकी बात किसी ने नहीं सुनी। उसकी पत्नी धतुरी भी जलाकर मार दी जाती है। वह स्वयं बुरी तरह से घायल हो जाता है। घायल अवस्था में भी वह गांधी और उनके सत्याग्रह को याद करना नहीं भूलता। वह कहता है, "हमने प्रतिज्ञा की है, रक्त की अंतिम बूंद तक बिना हथियार उठाए धीरज से, पक्के मन से और तनिक भी उतेजना लाए बिना ब्रितानिया सरकार से लड़ते रहेंगे– लड़ते रहेंगे। आखिर हम सत्याग्रही हैं– सत्य हथियार नहीं उठता। वह हथियार उठानेवालों को, उनके अविवेक को समझता है। यही तो है महाभारत आज का, जिसके कृष्ण हैं हमारे पूज्य बापू-बापू।"[11]

और यह कहते-कहते गाँधी का अंतिम सत्याग्रही नगारा का जीवन-लीला यही समाप्त हो जाती है।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि आज़ादी के पश्चात् गाँधी से प्रभावित होकर लिखे गए इस उपन्यास में उपन्यासकार राजेंद्र भटनागर ने गाँधी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह आन्दोलन को नए ढंग से प्रस्तुत किया है। हिंसा और अहिंसा के संघर्ष में अहिंसा को गांधीवाद का एकमात्र सफल हथियार माना है और प्रतिरोध की अन्य अवधारणा रचनाकार को स्वीकार नहीं है। लेकिन जिस तरह से उपन्यास में नगारा की मौत को दिखाया है उसे प्रतीत होता है कि आजाद भारत में गांधीवादी सत्याग्रह का भविष्य बहुत उज्ज्वल नहीं है। कहीं नगारा की मौत आजाद भारत में गांधीवादी सत्याग्रह के अंत की तो सूचना नहीं है।

संदर्भ :

1. भटनागर, राजेंद्र मोहन, अंतिम सत्याग्रह, भूमिका(समय का सच) अरु पब्लिकेशन, प्रा.लि. दिल्ली, 2011
2. भटनागर, राजेंद्र मोहन, अंतिम सत्याग्रह, भूमिका(समय का सच) अरु पब्लिकेशन, प्रा.लि. दिल्ली, 2011
3. भटनागर, राजेंद्र मोहन, अंतिम सत्याग्रह, अरु पब्लिकेशन, प्रा.लि. दिल्ली, 2011, पृष्ठ 18
4. वही, पृष्ठ 56 5. वही, पृष्ठ 57
6. वही, पृष्ठ 72 7. वही, पृष्ठ 78
8. वही, पृष्ठ 80 9. वही, पृष्ठ 83
10. वही, पृष्ठ 116 11. वही, पृष्ठ 122

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची

दलित चेतना की तहरीर : 'सिलिया'

डॉ जयश्री ओ

शोध सार : वर्ण व्यवस्था पर टिकी रखनेवाली भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितो की स्थिति अत्यन्त दर्दनाक रही है। युगों से जाति के नाम पर ये लोग अपने मानवीय अधिकारों से वंचित ही नहीं नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हैं। विरासत में मिली रोज़गार की समस्याओं को मूक पशु के समान सहकर जीनेवाले इन लोगों को डॉ. अम्बेड्कर जैसे सुधारवादी नेताओं ने समझाया कि दलित समाज की सबसे बड़ी ज़रूरत है अपने खोये हुए अस्मिता एवं आत्मसम्मान के प्रति सजग रहना। अम्बेड्करवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्यकार अपनी रचना एवं पात्रों के ज़रिये नई समाज व्यवस्था की संकल्पना करने लगे। स्वानुभूति की अभिव्यक्ति देनेवाला दलित साहित्यकार अपने भोगे हुए जिस पीड़ा की अभिव्यक्तिअपनी रचनाओं में की,आगे चलकर वही पीड़ा अपने अधिकारों की मांग करने लगी। धार्मिक जीवन की विकृतियों के विरुद्ध मानव की प्रतिष्ठा का यही चिंतन अपनी जाति के प्रति होनेवाले सामाजिक विसंगतियों और विषमताओ को मिटाने का, बेजुबानों को जबान, घुटन से मुक्तिदेने का कार्य करने लगा। सदियों से होनेवाले दलन से उद्धार का जो स्वर सुशीला टाकभौरे जी के साहित्य में मिलता है वह अनुपम है।आपकी 'सिलिया' नामक कहानी इसका उत्तम दस्तावेज़ है।

मुख्य शब्दः दलित चोतना-वर्ण व्यवस्था-सामाजिक ढोग-आत्मसम्मान-अस्मिता-

विषय चयन : मन में अनुभूतियाँ उत्पन्न करनेवाले तत्व को चेतना कही जाती है। मानवीय चेतना में ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक चेतना का समावेश निहित है जिससे मानव स्वयं के और अपने आसपास के वातावरण के तत्वों को समझने तथा मूल्यांकन करने का प्रयास करता है। मानव संघर्षशील प्राणी है तथा उसका जीवन संघर्ष की गाथा है। अपने में निहित चेतना के कारण ही मानव जीवन में आने वाले प्रत्येक संकटों में अपने अस्तित्व की रक्षा एवं विद्रोह करने की समर्थ भावना के साथ-साथ अन्याय के विरोध में लड़ने की शक्तिभी अर्जित करता है।

वर्ण व्यवस्था तथा जातिवाद की परतें भारतीय समाज में युगों से चली आ रही है। सदियों से दलित वर्ग उच्च वर्ग के उत्पीड़न के शिकार हैं। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक सभी स्तर पर उनका शोषण हो रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था में दलित होने के कारण उन्हें समाज के हाशिए पर रहना पड़ता है। वे निरीह पशु के समान विरासत में मिली रोज़गार की समस्याओं को सहते रहते हैं। लेकिन गौतम बुद्ध, डॉ बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा फुले जैसे महापुरुषों ने इस स्थिति में परिवर्तन लाना चाहा।उन लोगों ने सदियों से पशु से भी बदतर जीवन जीनेवाले इस दलितों को मनुष्य होने का अहसास दिलाया, स्वाभिमान और सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए उन्हें प्रेरणा दी। फलतः जन्म से ही घृणित, नीचे माने जानेवाले दलित वर्ग में आज धीरे-धीरे प्रतिशोध की चेतना जागृत होने लगी। इन्हीं महात्माओं से किये गये कार्य को संवेदनशील साहित्यकार खासकर दलित साहित्यकारों ने आगे बढ़ाया।उन्होंने अपने साहित्य द्वारा उद्घोषणा की है कि दलित भी मानव है, उन्हें भी जीने का अधिकार है। ऐसे महान साहित्यकारों में सुशीला टाकभौरे का स्थान अप्रतिम है।आपकी समस्त रचनाएँ स्वानुभूतियों का जीवंत दस्तावेज़ जो यथार्थ के धरातल पर समाज का प्रतिनिधित्व करने के साथ दलित चेतना के विकास में भी सक्षम हैं। उनके ही शब्दों में- "..........लेखन की प्रेरणा मुझे किसी अन्य से नहीं, बल्कि अपने अंतःकरण से मिली है। प्रारंभ में भावुकता के साथ मानवतावादी विचारधारा से, मेरा लेखन होता था। महाराष्ट्र में आने के बाद डॉ.भीमराव आंबेडकर की विचारधारा से मैं दलित साहित्य लिखने लगी हूँ।"[1] सुशीला टाकभौरेजी ने स्वयं दलित समाज के होने के कारण सामाजिक विषमता का ज़हर पिया है।अतः दलित व्यथा से रूबरू कराती उनकी रचनाएँ प्रबल आक्रोश के रूप में फूट पड़ती हैं। वे दबी कुचली मानवीय संवेदना को आन्दोलित कराने के साथ क्रांति की पहल द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान तलाशने में प्रेरित भी करती हैं। इस प्रकार की महत्वपूर्ण कहानी है 'सिलिया'। 'सिलिया'भंगी समाज की उस होनहार लड़की की कहानी है जो उच्च शिक्षा पाने की अदम्य इच्छुक,आज्ञाकारी एवं गंभीर स्वभाव की लड़की है। वह यह चाहती है कि उच्च शिक्षा पाकर अपने समाज में फैली विसंगतियों को हमेशा के लिए दूर की जाए।उसका

स्वानुभव ही इसके लिए अपनी बैसाखी बन जाती है। 'सिलिया' एक ओर भारतीय समाज की जाति व्यवस्था और सामंती व्यवस्था के बीच पिसते दलितों की हाहाकार है तो वहीं दूसरी ओर उनमें उभरते आक्रोश, विरोध, एवं संघर्ष की तीव्र चेतना की छवि भी है।

अपने को सभ्य माननेवाले उच्च वर्ग दलित समाज को अपने पैरों की जूती मानता है।दलित समाज भी वर्षों से इसे अपनी नियति मानकर जीते हैं। वे अपने बच्चों को यही सिखाते हैं कि हम जाति के छोटे हैं बड़ों के घर के भीतर नहीं जा सके;हम अछूत दूसरों के कुएँ से पानी नहीं भर सकते। इसलिए ही प्यास से संतप्त मालती सार्वजनिक कुएँ से पानी पीने के कारण उसकी माँ उसे बहुत डॉटती है और मारती है- "..........क्यों री, तुझे नहीं मालूम, अपन वा कुएँ से पानी ना भर सकें हैं?.....चढी तू कुएं पर क्यों रस्सी बाल्टी तो हाथ लगाई...... और वाक्य पूरा होने के साथ ही दो-चार झापड धूसे और बरस पडते मालती पर।"[2] लेकिन आधुनिक समाज के दलित वर्ग इन ख्यालतों में तर्कशील होते हैं। वे इन परंपरावादी एवं रूढीगत विचारों को ठुकरा देते हैं। सही और गलत की पारखी करते हैं।लेखिका कहती हैं- "सिलिया का स्वभाव चिन्तनशील बनता जा रहा था।परंपरा से अलग, नये-नये विचार उसके मन में आते। वह सोचती आखिर मालती ने ऐसा कौन-सा जुर्म किया था, प्यास लगी, पानी निकालकर पी लिया।"[3]

दलित समाज के साथ समाज हमेशा दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। इसका बखूबी अनुभव किया है सिलिया ने अपने बचपन में। स्कूल की तरफ से बाहर खेलने के लिए जाते समय सिलिया अपनी सहेली हेमलता ठाकूर के साथ उसकी बहन की ससुराल में चली जाती है।बहन की सास ने हंसकर बातें कीं, हेमलता को पानी का गिलास दिया।लेकिन निम्न जाति के जानने पर उसकी ओर बढता हुए पानी का गिलास एकाएक महज वापस हो गया। यही नहीं मौसीजी के बेटे से उसे गाडरी मुहल्ले के पास छोड दिया था जहाँ सिलिया के रिश्तेदार रहते हैं। सिलिया को प्यास लगी थी। मगर वह मौसीजी से पानी मांगने की हिम्मत नहीं कर सकी।सिलिया याद करती है कि बच्चा होने के कारण वह कुछ न कर सकी।लेकिन यह अपमानजनक व्यवहार तथा कौन जात है? सवाल भी उसके कानों में निरंतर हथौडा मारते थे। जीवन भर वह हेमलता की मौसी जी से मिली उमस को भूल नहीं पा रही थी। बड़े होने पर उसने समझ लिया है कि उस समय मुझे बहुत प्यास लगी हुई थी, लेकिन वह प्यास बुझाने का समय आ गया है। वास्तव में सिलिया की यह प्यास सिर्फ पानी पीने से ही नहीं खत्म हो सकती है। यह प्यास आत्मसम्मान, आत्मगौरव और आत्मरक्षा की है, जिसे प्राप्त करना वह चाहती है।उसने समझ लिया है कि शिक्षा ही इसका एकमात्र साधन है। इसलिए वह दृढसंकल्प करती है कि- "मैं बहुत आगे तक पढूँगी, पढती रहूँगी, उन सभी परंपराओं के मूल कारणों का पता लगाउँगी जिन्होंने हमें समाज में अछूत बना दिया है।"[4]

युगों से जाति के नाम पर पग-पग पर होनेवाला अपमान दलितों के जीवन की सच्चाई है।अत्यन्त गौरव की बात है कि शिक्षा प्राप्त दलित वर्ग सामाजिक ढोंगों को पहचान करने के साथ सवर्ण समाज के दबाब और बहकाव में नहीं आती है। अतः वे प्रलोभनों के जाल में फंसने से अपने को रोकते हैं। उसका साक्षी है सालिया की माँ अपनी बेटी की शादी के मामले में लिया गया फैसला। सभी के सिफारिश करने पर भी दुनिया नामक अखबार में आये विज्ञापन निस्संकोच ठुकरा देती है- "शूद्रवर्ण की वधू चाहिए।" मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के जाने-माने युवा नेता सेठजी अछूत कन्या के साथ विवाह करके समाज के सामने एक आदर्श रखना चाहते थे। उनकी केवल यही शर्त है कि लडकी कम से कम मेट्रिक हो।"[5] वह उसमें निहित षड्यंत्र को भी स्वयं अच्छी तरह समझती है और अपनेवालों को समझाती है- "नहीं भैया, यह सब बड़े लोगों के चोंचले हैं। आज समाज को और सबको दिखाने के लिए हमारी बेटी से शादी कर लेंगे और कल छोड़ दिया तो....... हम गरीब लोग उनका क्या कर लेंगे? अपनी इज्जत अपने समाज में रहकर भी हो सकती है। उनकी दिखावे की चार दिन की इज्जत हमें नहीं चाहिए। हमारी बेटी उनके परिवार और समाज में वैसा मान-सम्मान नहीं पा सकेगी न ही फिर हमारे घर की ही रह जायेगी।"[6] इस प्रकार दलित वर्ग अपने चारों ओर घेरती चालाकियों तथा छल को समझने तथा अपनी जाति को समझाने में आज सक्षम बने।

जन्म से ही घृणित, नीच माने जानेवाले दलित वर्ग अपनी अस्मिता एवं आत्मसम्मान के बारे में चिंतित करने लगे।इसलिए आज वे अपने प्रति होनेवाले दुर्व्यवहारों के विरुद्ध आवाज़ उडाते हैं। समाज में फैलै वर्णवादी,जातिवादी और दमनवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश करने में वे नहीं हिचकते हैं। वे लोग समझने लगे कि जिस अभिशप्त जीवन

को हमारी जाति ने भोगा, वह अपनी नियति नहीं है बल्कि अपने साथ की गयी सोची-समझी साजिश है। उन्होंने समझ लिया कि स्वाभिमान मोहरा बनकर जीना खुद अपने को मातकर जीना है। इसलिए ही विवेच्य कहानी की सुदृढ और पक्के इरादोंवाली सिलिया यह संकल्प लेती है कि हम जैसे दलितों को सवर्ण द्वारा फेंके हुए टुकडे नहीं चाहिए बल्कि रोटी से बढकर सामाजिक न्याय को हासिल करना है - "अछूत कन्या से विवाह......समाज के सामने आदर्श रखने की बात.....यह सेठजी महाशय का ढोंग है,आडम्बर है या सचमुच ये समाज की परंपरा को बदलनेवाले, सामाजिक बदलाव की क्राति लाने वाले महापुरुष हैं।..........जो एक छोटे गाँव की अछूत मानी जानेवाली भोली-भाली लड़की के मन में अपना विश्वास जगा सके और फिर दूसरों की दया पर सम्मान......अपने निजत्व को खोकर दूसरों की शतरंज का मोहरा बनकर रह जाना......बैसाखियों पर चलते हुए जीना.......नहीं. कभी नहीं.......हम क्या इतने ही लाचार हैं. आत्मसम्मान रहित हैं? हमारा अपनी भी तो कुछ अहंभाव है उन्हें हमारी जरूरत है, हमको उनकी जरूरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहे......अपना सम्मान हम खुद बढायेंगे.......।"[7]

वर्तमान काल में दलित डॉ.अंबेडकर के दर्शन एवं चिंतन से अवश्य प्रभावित हैं। उन्होंने अपने जीवन में इस मूलमंत्र को अपनाया कि "शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो।" इसलिए ही अपने आपको अस्पृश्य, कनिष्ठ, दीन, दास मानने के स्थान पर परिश्रम एवं ताकत से स्वयं तानकर खडे होने का प्रयत्न करने लगे। आज वह सपन्न समाज की व्यवहार कुशलता की नींव को परख रहा है और अपने अस्तित्व का, अपने व्यक्तित्व का अंकन अपने नज़रिए से कर रहा है।इसलिए वे स्वयं सोच रहे हैं कि इस हालत को कैसे मातकर सकते हैं। विद्यासंपन्न सिलिया अपने समाज से आह्वान करती है कि अभी तक अपने हाथ में रखे झाडू को फेंको जो हमारी दासता का प्रतीक है बदले में कलम ले- "......झाडू! कमबख्त यह तो जानवर से भी बदत्तर जीवन कायम रखने का हमारे लिये दुष्चक्र है। किसने थमा दिया हमारे समाज के हाथों में ये झाडू? इस समाज में पैदा होना नहीं होना तो हमारे हाथ में नहीं था परंतु इस अपमानजनक गुलामी के चिह्न को छोड़ना तो हमारे हाथ में है। यह हम अवश्य कर सकते हैं......... वह दृढ़ता से सोच रही थी।..........हीनता और दीनता के भाव तो न जाने कब के जा चुके थे वह मन ही मन सोच रही थी झाडू नहीं कलम। हाँ कलम ही उसके समाज का भाग्य बदलेगी।"[8] जातिवाद के मकड़ीजाल में पड़कर जीवनभर दमन और अपमान की अमानवीय पीड़ा को भोगते रहना अपनी अस्मिता के लिए कलंक मान लिया है वर्तमान शिक्षित दलित वर्ग ने। वे किसी की सहानुभूति नहीं चाहते। अपनी इज्जत और बराबरी का दर्जा पाने के लिए वे दमन का पर्दा हटाकर आर-पार की लडाई लडना चाहते हैं। इसके लिए वे कलम को हथियार बनाते हैं।

इसप्रकार हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि लेखिका सूशीला टाकभौरे जी सिलिया के माध्यम से निजत्व को खोकर युगों से सोये हुए दलित समाज को आत्मसम्मान तथा अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक करने के साथ-साथ संपूर्ण ताकत से अपने प्रति होनेवाले अत्याचारों के खिलाफ उठ खड़े होने का आह्वान भी करती है- "मैं विद्या, बुद्धि, और विवेक से अपने आपको ऊँचा साबित करके रहूँगी।किसी के सामने झुकूंगी नहीं, न ही कभी अपना अपमान सहन करूँगी।"[9] वास्तव में यह केवल एक सिलिया की नहीं वरन् युगों से सवर्ण वर्ग द्वारा उत्पीडित हज़ारों सिलियों की वाणी है।स्वयं सिलिया साबित करती है कि दलित समाज की प्रगति भगवान से नहीं अपने कर्मों से होता है। आज वह महान विदुषी समाजसेवी कवयित्री साहित्य जगत का मूर्धन्य लेखिका आदि विशेषणों के अधिकारी से बढ़कर अपने समाज के आगे मशाल लेकर चलनेवाली पथप्रदर्शक भी है- ".....वह एक चिंगारी है जो मशाल बनकर अपने समाज की प्रगति के मार्ग को प्रकाशित करेगी।"[10]

आधार ग्रंथ: दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ- सं.डॉ.कुसुम वियोगी-कंचन प्रकाशन।, दिल्ली।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. https-//hindi.newsclick.in
2. सिलिया-सुशीला टाकभौरे-पृ.सं.24
3. वही -पृ.सं.26
4. वही -पृ.सं.27
5. वही -पृ.सं.23
6. वही -पृ.सं.23
7. वही –पृ.सं.27
8. वही –पृ.सं.28
9. वही -पृ.सं.27
10. वही –पृ.सं.28

असोसियेट प्रोफसर, हिंदी विभाग
सरकारी ब्रेण्णन कॉलेज, तलश्शेरी, कण्णूर।

अध्यापन पेशे की आदर्श शख़्सियत:डॉ वी के हरिहरन उण्णित्तान

डॉ एन सुरेष

अध्यापकों में इने-गिने ऐसे होते हैं जिनका वर्चस्व ज़िंदगी भर विद्यार्थियों के दिलो-दिमाग में पथ-दर्शक के रूप में आदर्श बनकर छाए रहते है और अमिट छाप छोड़ जाते हैं। हाल में दिवंगत, मेरेलिए अत्यंत पूजनीय एवं प्रिय प्रो (डॉ) वी के हरिहरन उण्णित्तान जी ऐसे ही अनोखे गुरुश्रेष्ठों में से हैं जो मेरेलिए सदैव आदर्श रहे हैं।

एक छात्र रहते हुए आचार्य हरिहरन उण्णित्तन जी के अध्यापकीय व्यक्तित्व के अनोखे गुणों एवं विशेषताओं से जुड़ी जो भी बातें मेरे दिलो-दियाग में गहरी पैठ गई हैं, उनको उन्हीं के अनंत शांति पर चले जाने के इस संदर्भ में पाठकों के सम्मुख पेश करना मात्र ही इस लघु-लेख का मकसद है, न कि उनके बहुविध मौखिक, शोधपरक, व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक, अनूदित आदि रचनाओं का अध्ययन विश्लेषण करना।

अध्ययन-अध्यापन के मामले में आप के द्वारा अपनाए गए तौर-तरीकों का मैंने जो अंदाज़ा लगाया था वह कुछ ऐसा है कि अध्ययन-अध्यापन के लिए आवश्यक जो भी और जितनी भी सामग्रियाँ या विषय है, उनका विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया जाए, एकदम आत्मसात् किया जाए तथा उन विषय वस्तुओं की पृष्ठभूमि में छिपे हुए या अंतर्लीन जो भी गोत्रीय, सामाजिक, भौगोलिक, भाषिक, शैलीपरक, समाज-भाषा वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक व्याकरणिक एवं साहित्यिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, मिथकीय तत्व हैं उनके तहत और उनके आलोक में कक्षा में या श्रोताओं के सामने व्याख्यान प्रस्तुत किए जाए।

मेरे विद्यार्थी जीवन में एक सर्वतोमुखी, सर्वोत्तम व्याख्यान दाता की हैसियत से, याने कि अध्यापन प्रक्रिया के कलात्मक, बौद्धिक एवं छात्रोन्मुख पहलुओं को समेकित करते हुए अध्यापन कार्य का निर्वाह, अपनेलिए तथा विद्यार्थियों के लिए यथेष्ट एवं संतोषजनक रूप में करनेवाले अध्यापक के रूप मेरे याददाश्त से गुज़रनेवाले प्रथम शख़्सियत है दिवंगत आदरणीय डॉ हरिहरन उण्णित्तान जी। वैसे तो, हिंदी भाषा के महत्व उसकी साहित्यिक संपदा, उसके शुद्ध रूप एवं प्रयोग की संकल्पना, उसके सांस्कृतिक वैभव, उसकी लंबी भाषावैज्ञानिक परंपरा, उसकी भौगोलिक स्थिति जैसी कई विशेषताओं का ज्ञान मुझे तत्कालीन हिंदी विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफसर रहे डॉ. एन आई नारायण जी से अर्जित हुआ था तो उसके स्वरूप, गढ़न, सौंदर्यशास्त्र, उसकी व्युत्पादन व प्रजनक क्षमताएँ तथा उसकी भाषावैज्ञानिक एवं साहित्यिक धरोहरों एवं परंपराओं पर गहन चिंतन मनन की ओर मेरी चेतना को मोड देने एवं गतिमान करनेवाले प्रथम गुरु प्रो उण्णित्तान जी थे। दोनों की पवित्र आत्माओं के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि !

कक्षा में छात्रों के सामने व्याख्यान प्रस्तुत करने का उनका अपना अलग तरीका था। पढ़ाने का विषय चाहे जो भी हो, उनके दिमाग की स्मरण-कोशिकाओं में, सारी सहायक सामग्रियों के सहित, पूर्व-सज्जित होगा। कक्षा में प्रवेश करते ही श्याम-पट पर पाठ्य विषय से संबंधित कोई शीर्षक, या कोई पाठ्य बिंदु या काव्य शास्त्र का कोई सूत्र लिख डालते। फिर शुरू होता है शांत, स्थिर, संतुलित मुद्रा में खड़े होकर निश्चित बिंदु पर अभंग, अनवरत, अनर्गल व्याख्यान। मिसाल के तौर पर बताया जाए तो काव्य शास्त्र के समस्त सिद्धांत एवं परिभाषाएँ उनके दिमाग रूपी कंप्यूटर में पूरे का पूरा अपलोडेड हैं। ऐन वक्त पर क्लिक करने पर उद्दिष्ट सामग्री निकल आएगी।

हिंदी भाषा एवं साहित्य से जुड़े किसी भी छोटे-मोटे विषय को लेकर घंटों अचूक व्याख्यान देने में उनकी माहिरी का अनुभव करते ही बनता है। भाषा और साहित्य के किसी भी विधा पर, चाहे कविता हो, निबंध हो, कथासाहित्य हो, नाटक हो, काव्य शास्त्र हो, आलोचना हो, व्याकरण हो, या फिर आधुनिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत वर्णनात्मक भाषा विज्ञान हो, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान हो, संरचनात्मक भाषा विज्ञान हो, रूपांतरण-प्रजनक सिद्धांत हो, शैली विज्ञान हो, छात्रोचित व्याख्यान देने में (छात्रों को सरल ढंग से समझाने-

बुझाने में) उनकी प्रतिभा, क्षमता, योग्यता एवं कुशलता का मैं उनके छात्र रहते हुए सीधे अनुभव कर चुका हूँ। साहित्य के मर्म को पकड़ लेने में और साहित्य की नब्ज़ को पहचानकर उसकी बारीकियाँ छाँट निकालने में उनको प्राप्त सिद्धि अनन्य ही है।

प्रेमचंद के 'कुछविचार' नामक पुस्तक में संकलित वज़नदार निबंधों पर चर्चा करते हुए वे हमें साहित्य के न जाने किन किन ज्ञात एवं अज्ञात दिशाओं की ओर ले जाते थे।

व्यक्तिगत रूप में उण्णित्तान जी की बड़ी खूबी मैंने यह देखी है कि वे अपने स्वयं अर्जित ज्ञान, योग्यता, गैर मामूली याददाश्त, हिंदी-अंग्रेज़ी-मलयालम-संस्कृत भाषाओं पर प्राप्त अधिकार, अध्यापन कर्म में प्राप्त असामान्य क्षमता, लेखन कर्म में सुधी पाठकों एवं समीक्षकों को भी अचंभा करनेवाली अपनी सिद्धि आदि पर कदापि कोई दिखावा या घमंड नहीं दिखाया करते थे। एक दृष्टि से उनका व्यक्तित्व अंतर्मुखी था। अन्यथा वे अकादमिक क्षेत्र के कितनी ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाते। तब भी अपने कर्मों, योग्यताओं, रचनाओं के औन्नत्य के मारफ़त छात्रों, अध्यापकों, अनुसंधाताओं, समीक्षकों आदि के मानस में वे ज़बरदस्त प्रतिष्ठित हैं।

एम ए हिंदी की पढ़ाई के दिनों में उण्णित्तान जी के उच्चस्तरीय व्याख्यान सुनने और उनके अध्यापन कौशल की गरिमा का अनुभव करने की वजह से ही सचमुच मेरे दिमाग में विचार पैदा हुआ था कि मुझे आगे किस दिशा में और कैसे अग्रसर होना है। काव्यशास्त्र और भाषाविज्ञान पढ़ाने में वे ही माहिर थे। काव्य शास्त्र स्नातकोत्तर कक्षा में नया विषय तो नहीं था, मगर भाषा विज्ञान बिलकुल नया था, उण्णित्तान जी की अनोखी, विद्वत्तपूर्ण शिक्षण शैली की वजह से मुझे कठिन समझा जानेवाला भाषाविज्ञान न तो कठिन लगा और न उबाऊ या दूभर; बल्कि दिलचस्प लगा, कक्षा में वे विषय को इस तरीके से प्रस्तुत करते थे कि मैं सुनने और ग्रहण करने की प्रक्रिया में जाने-अनजाने मग्न हो जाता था। उनके अध्यापन कौशल का यही कमाल है। अध्यापन में भी होती है एक शान-शौकत। एम ए हिंदी की पढ़ाई के बाद भाषा विज्ञान में और अधिक ज्ञान पाने और इसी विषय में पीएच डी करने की आशा और प्रेरणा मेरे मन में पैदा, सचमुच, उण्णित्तान जी के प्रभावशाली शैक्षिक व्यक्तित्व के असर से ही हूआ था।

(क्रमशः)

भूतपूर्व प्रोफसर, हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9349439544

उत्तर

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र
2. अरविंद कुमार
3. धर्मवीर भारती
4. संत नामदेव
5. प्रयोगवादी रचनाएँ
6. रामेश्वर प्रेम
7. राममूर्ति त्रिपाठी
8. मुद्राराक्षस
9. रिपोर्ताज
10. बालनाथ
11. डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी
12. शमशेर बहादुर सिंह
13. सबरस
14. चतुर्सेन शास्त्री
15. गप्प बाइस्कोप
16. गंगा प्रसाद विमल
17. नामवर सिंह
18. भारतेंदु
19. रमाशंकर आर्य
20. बानु मुष्ताख

21 वीं सदी में स्त्री अस्मिता के संघर्षों का उपन्यास -गीताश्री का 'कैद बाहर'

जानकी

हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श समानता का अधिकार, स्त्री अस्मिता, अस्तित्व स्वतंत्रता और मुक्ति को उद्‌घाटित करता है। स्त्री विमर्श, स्त्री चेतना, स्त्री अस्मिता पर अब तक कई आलेख, कहानी, उपन्यास, शोध लेख प्रकाशित हो चुके हैं जिन्हें न सिर्फ स्त्रियों ने बल्कि पुरुष लेखकों ने भी लिखा है। हिंदी साहित्य में अस्मितमूलक विमर्शों में स्त्री विमर्श मुख्य धारा का विमर्श रहा है। किसी भी देश, प्रदेश, समाज या परिवार को विकसित करने में स्त्रियों का अहम योगदान होता है। आज की स्त्री किसी भी मायने में पुरुष से कमतर नही है। कोई भी क्षेत्र हो स्त्रियाँ हर क्षेत्र में मे अपना योगदान दे रही है शिक्षा, चिकित्सा, पत्रकारिता, रक्षा, व्यवसाय, खगोल, विज्ञान, न्याय संस्थाओ आदि में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कंधे से कंधे मिलाकर आगे बढ़ रही है। देश के प्रधानमंत्री ने भी दिल्ली में नेशनल कैडेट कोर यानी एन सी सी की रैली को संबोधित करते हुए यह कहा कि "कभी बेटियों की भागीदारी केवल सांस्कृतिक आयोजनों तक सीमित रहती थी, लेकिन आज भारत की बेटियां जल, थल, नभ और अंतरिक्ष में भी अपनी क्षमता का लोहा मनवा रही हैं, वह वर्तमान का यथार्थ भी है और बदलते भारत की नई तस्वीर भी।" माना कि स्त्रियों के जीवन में महत्वपूर्ण सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं परन्तु दिन-प्रतिदिन नयी चुनौतियां उनके समक्ष प्रस्तुत हैं।

गीताश्री आधुनिक युग की लेखिका-पत्रकार है। स्त्री व पत्रकार होने के कारण उन्होंने स्त्री जीवन को करीब से देखा है। अब तक लेखिका के कई कहानी-संग्रह, उपन्यास और स्त्री विमर्श पर शोध पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। इस उपन्यास में लेखिका पाठकों के सामने कई प्रश्न लेकर आती है और उनके जवाब भी उपन्यास मे मिलते है जैसे क्या अब की स्त्रियाँ सच मे सभी तरह के रूढ़िवादी बंधनों से मुक्त और हर कैद से बाहर है? क्या स्त्रियाँ मानसिक रूप से स्वतंत्र है? क्या 21 वी सदी की स्त्रियाँ स्वतंत्र रूप से बिना किसी पारिवारिक, सामाजिक पूर्वाग्रह के अपने फैसले ले सकती है जब वह यह न सोचे कि लोग क्या कहेंगे? इस उपन्यास में ऐसे ही प्रश्नों के जवाब ढूंढने की कोशिश की गई है। ममता कालिया अपनी पुस्तक 'भविष्य के स्त्री विमर्श' में लिखती हैं "स्त्री अपने सम और विषम संबंधों को समझने की भरपूर कोशिश कर रही है। लोकसमम्त को झटक कर अलग करना उसके लिए जरूरी है क्योंकि इन्हीं प्रतीकों की प्रतिष्ठा में स्त्री की न जाने कितनी पीढ़ियां होम हुई हैं?" यह उपन्यास भी आज की स्त्री की जिंदगी में आते हुए कई पड़ावों, उलझनों, से रूबरू कराती है जो प्रत्येक स्त्री का यथार्थ है। उपन्यास का शीर्षक ही बहुत कुछ बयां कर देता है "क़ैद बाहर" स्त्रियों की कैद छूटती ख्वाहिशों का सच। इस उपन्यास में माया, मालविका, शशांक की माँ, डिलाइला, सिन्दूरी, संचिता आदि स्त्रियाँ पात्र है और कुछ पुरुष पात्र भी है। क़ैद से बाहर निकलने का मार्ग बिल्कुल भी सरल नहीं है। सदियों से हमारा पुरुष प्रधान समाज, व उनके द्वारा बनाई गयी रूढ़िवादी परंपराओं, रीति रिवाजों में आज भी स्त्री कहीं न कहीं क़ैद है वह इससे निकलने की कोशिश कर रही है। हमारा समाज आज भी स्त्रियों की आजादी की सीमा तय करता है, आजादी कितनी और कब देनी है, यह आज भी बहुत कम स्त्रियाँ ही तय करती है, उनके फैसलों पर किस हद तक पुरुषों का प्रभाव रहता है हम इस पर स्वयं विचार करने मे सक्षम है इसलिए आज के इस आधुनिक युग में स्त्रियों का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और स्वावलंबी होना अति आवश्यक है।

उपन्यास के आवरण पर ही लिखा गया है कि "यह उपन्यास उन स्त्रियों के अन्तबाह्य संघर्षों का कोलाज है जो समाज को पारंपरिक परिवार के स्थान पर एक नया केंद्र देना चाहती है जहां किसी की संवेदना को रौंदा न जाए, न स्त्री की, न पुरुष की; जहां इन दोनों का संबंध आरम्भ से अंत तक एक दूसरे को अपने-अपने 'व्यक्ति' में खिलने-खेलने-खुलने पूरा होने में मदद देता हो।"[1] उपन्यास की सभी स्त्री पात्र कामकाजी महिलायें है वह आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नहीं है, नौकरी कर के धन उपार्जन करती है। माया जो पूरे उपन्यास मे प्रमुख पात्र है वह दिल्ली शहर में पत्रकार की नौकरी करती है। वह अपनी शर्तों पर जीने वाली जिंदादिल स्त्री है जिसे 'ऑन दा स्पॉट रिपोर्टिंग पसंद है। उसकी जिदंगी मे नीरज के रूप मे प्रेम ने प्रवेश किया और वह दोनों साथ मे लिव इन मे रहने लगे पर धीरे-धीरे कब इस रिश्ते ने शादी का चोला पहन लिया पता ही नहीं चला। नीरज के निषेधों के कारण वह क़ैद होती जा रही थी, उसके अन्तर्मन के लिए यह स्थिति असहनीय बनती जा रही थी। माया, मालविका को अपनी जिंदगी के बारे

मे बताते हुए कहती है। माया का अपनी माता-पिता की अकेली संतान होने के कारण, उनका दायित्व और साथ ही अपनी नौकरी दोनों के सबंध मे घर से बाहर आना जाना लगा रहता था परंतु जब उसने महसूस किया कि यह रिश्ता अब उसके लिए कैद बनता जा रहा है तो उसने नीरज से अलग होने का मुश्किल फैसला अंततः ले ही लिया "जैसे तुमने राह चुनी शादी की कुर्बानी देकर, वैसे ही मैंने करियर को प्राथमिकता दी प्रेम को त्याग कर।"[2] माया ने फिर से आत्मविश्वास और नई उर्जा से अपने सपनों को पूरा करने के लिए खुद को संभाल कर अपनी यात्रा फिर से शुरू कर दी। उसको भी नीरज से आत्मीय प्रेम था परंतु इसके बदले वह अपने सपनों को नहीं खोना चाहती थी। जब नीरज ने फैसबुक पर विलाप करते हुए, माया की पोस्ट पढ़ी तो वह उसके पास वापस लौट कर आया पर माया मन बना चुकी थी फिर से खुद को ओर तकलीफ नहीं देगी। माया ने नीरज को अपनी स्टडी टेबल की ओर इशारा किया। वहाँ कई स्लोगन कार्ड लगे हुए थे उन पंक्त्यिों मे माया के इस रिश्ते का अंत ही क़ैद से बाहर होने का मुक्तिपथ था। "मैं स्मृतियों के साथ मरना पसंद करूँगी, सपनों के साथ नहीं।/अगर आप लगातार दाता बने हुए हो तो अपनी सीमाएं जानिए,/लेने वाले की कोई सीमा नहीं होती।/आप वहां से खुशियाँ तलाशना बंद कर दें जहां उसे खोया है।"[3]

आज हम भले ही आधुनिक युग मे जी रहे है परंतु जिस भारतीय समाज में हम रह रहे है वह अब भी स्त्रियों को पुराने जमाने के चश्मे से ही आँकता है। जहां स्त्रियाँ अब भी घर की चारदीवारी मे माँ, बहन, पत्नी, चाची, बुआ, भाभी आदि के रूप मे घर संभालती है, खाना बनाती है, घर परिवार व बच्चे की जिम्मेदारियाँ वहन करती है। अगर वह नौकरीपेशा हो तब भी ये जिम्मेदारियाँ उसके ही द्वारा निभाई जाती है। "नीरू, मैं जान गई हूं कि एक पुरुष पत्नी-प्रेमिका-मां के रूप में तो हमें स्वीकार सकता है लेकिन एक स्त्री के रूप में में स्वीकारने को अब तक तैयार नहीं हो पाया है।"[4] पुरुषों ने हम स्त्रियों को हर संबंध मे तो स्थापित कर दिया है पर अब भी स्त्री को स्त्री के रूप मे नहीं देखा जाता उसके सपने, उसकी महत्वाकांक्षा, समय के साथ इन रिश्तों को निभाने में पीछे छूट जाते है।

उपन्यास में डिलाइला, माया की दोस्त जिसने प्रेम के लिए अपने धर्म तक को बदल लिया, विशाल से विवाह किया पर क्या प्रेम सिर्फ डिलाइला ने ही किया उसे ही सारे समर्पण करने थे। "ये स्त्रियाँ भी न प्रेम को ही सबसे बड़ा धर्म मानकर सब कुछ न्यौछावर कर देती है, और धर्म.....यह क्या बला है? एक स्त्री के किसी काम का नहीं जितनी जल्दी पीछा छूट, उतना बेहतर।"[4] विशाल एक अमीर हिन्दू युवक है जिस से डिलाइला हिन्दू रीति रिवाजों के अनुसार विवाह करती है। माया अपनी दोस्त के इस फैसले पर आपत्ति जताती है। अगर दोनों एक दूसरे से प्रेम करते है तो धर्म परिवर्तन क्यूँ जरूरी है दोनों अपने अपने धर्म का पालन कर सकते है पर ऐसा हमारे समाज मे बहुत कम ही होता है अखबारों मे आये दिन धर्म परिवर्तन को लेकर हिंसा की खबरे आती रहती है। कहा जाता है कि अब शिक्षा के कारण मानसिकता में परिवर्तन हो रहा है परंतु अब भी धरातल पर परिवर्तन होना शेष है।

मालविका एक मध्यमवर्गीय स्त्री है उसकी कहानी शायद प्रत्येक सामान्य स्त्री की कहानी है। बचपन से ही भाइयों और बहनों के बीच भेदभाव को देखकर बड़ी हुई। हर बेटी अपने भाई और माता-पिता के प्रेम के लिए, उनके सम्मान व उनकी आर्थिक स्थिति को समझकर कभी इन छोटी-छोटी घटनाओं को महसूस नहीं करती। अपनी बी.ए. की पढ़ाई ट्यूशन और स्कूल मे नौकरी कर पूरी करती है, एम.ए. की पढ़ाई भी करना चाहती थी पर उसके लिए पिता पैसा खर्च नहीं करना चाहते थे तो दिल्ली आकर नौकरी कर लेती है वही एक सम्पन्न नौकरी करने वाले युवक से मिली जिस से सिर्फ दोस्ती ही हुई थी कि परिवार वालों के दबाव मे 20 साल की आयु में ही शादी कर ली और "शादी के बाद वही हुआ जो हर लड़की का होता है"[5] नौकरी नहीं करने देना और घरेलू हिंसा, अपमान और तिरस्कार का शिकार होती गयी "पति को प्यार तब आता मुझ पर जब उसे मेरी जरूरत होती, शारीरिक या मानसिक किसी भी तरह से। मेरा शरीर, मेरा मन क्या चाहता है, इसकी कभी किसी ने जरूरत महसूस नहीं की।"[6] अततः जब और बर्दाश्त नहीं कर पायी तो वह इन बंधनों को तोड़कर बाहर निकल आयी। बच्चों से अलग होना आसान नहीं होता खासकर जब आप माँ है "दी, फैसला लेना कभी भी आसान नहीं होता, खासकर जब सिर्फ आपसे ना जुड़ा हो बल्कि एक परिवार, एक समाज और हमारी समूची सभ्यता से जुड़ा हो और इन सबके साथ यदि आप एक बच्चे की मां है।"[7] दिल्ली आकर वह माया से मिलती है और नौकरी ढूँढ कर अपनी जिंदगी को नया आयाम देने की कोशिश मे जुट जाती है। इतना कुछ झेलने के बाद 35 वर्ष की उम्र में फिर से कश्मीरी युवक फैज से प्रेम करती है क्यूंकि फैज उसे वो सम्मान, आदर देता है जो अधिकांश स्त्रियों के जीवन से गायब है पर फिर भी वह इस संबंध को समाज के डर से नाम देने से डरती है। "स्त्रियों का कद तो बढ़ गया है, घरों में अभी भी उनके प्रति नजरिया नहीं बदला है।"[8] अपने अकेलेपन और दुखों से लड़ती, दुखी मालविका अपने प्रेमी फैज़, से

मिलने श्रीनगर से कुछ दूर पम्पोर गाँव जाती है। फ़ैज़ के घर में सब उसका स्वागत करते है। मुसलमान परिवार ने एक हिन्दू ब्राह्मण स्त्री को पूर्ण रूप से अपना लिया परन्तु वहाँ दहशत और आतंक का माहौल देख कर मालविका हैरान रह गई। फ़ैज़ के भाइयों के माध्यम से लेखिका ने कश्मीर की वास्तविक छवि को प्रस्तुत किया है। लेखिका का यह अत्यंत ही साहसिक कदम है।

उपन्यास में लेखिका ने माया की भाभियों के प्रसंग के बारे में भी बताया है जहां वह अपने घर मे पति, बच्चों, के साथ खुश हैं उन्हें मुक्ति की कामना नहीं, क्योंकि उनकी महत्वाकांक्षाएँ अत्यंत सीमित है। माया की चचेरी भाभी कहती हैं "मायू जी हम लोगों को मुक्तिनहीं चाहिए। हम लोग इसी में खुश है। जिस हाल में पति रखता है, वही ठीक है। हर काम के लिए पति है न? डॉक्टर के पास जाने से लेकर सब्जी लाने तक......हम लोग रहेंगे हमेशा मिसेज़ सिंह, मिसेज़ शर्मा, मिसेज़ गुप्ता।"[9] जीवन अपना है, इसे कैसे जीना है किस प्रकार निर्वाह करना है यह पूर्णतया व्यक्तिगत है। लेखिका ने दोनों पक्षों की मनोस्थिति को अच्छे से दर्शाया है।

उपन्यास मे सिंदूरी और संचिता का संघर्ष बेहद कठिन है क्योंकि वह समलैंगिक है सिंदूरी गोरखपुर की रहने वाली है और अपने परिवार से अपनी पहचान छुपाने के लिए नाम के साथ रेड्डी लगा लिया है। हमारे समाज को तो स्त्री पुरुष की मित्रता में ही संदेह प्रतीत होता है तब समलैंगिक रिश्तों को कैसे मान्यता दे? सिन्दूरी घर से भाग जाती है। अपनी लड़ाई स्वयं लड़ती है, नौकरी कर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनती है पर उसके परिवार वाले उसे ढूँढ ही लेते हैं और अपने साथ जबरन ले जाते हैं। असाधारण प्राणशक्ति और साहस से भरी सिन्दूरी पुनः घर से भागने में सफल होती है। वह मुम्बई चली जाती है और संचिता भी उसका साथ देती है।

कितने आश्चर्य की बात है कि जब समाज का अधिकांश भाग ही समलैंगिक सम्बन्धों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, इसे एक रोग समझते हैं, वहाँ 65 वर्षीया शशांक की माँ सिन्दूरी और संचिता का साथ देती है। शशांक की माँ का पैंसठ वर्ष की उम्र मे तलाक लेने का फैसला माया और शशांक को हैरानी मे डाल देता है। पश्चिमी समाज के लिए या कोई अचरज की बात नहीं है क्योंकि वहां तलाक और पुनर्विवाह किसी भी उम्र में संभव है। पर भारतीय समाज मे अब जाकर इस तरह की बहुत कम ही घटनाएं सामने आ रही है। शशांक की माँ अपने जमाने की एम. ए. पास है और इंग्लिश मीडियम से पढ़ी हुई है। अतः विवाह के बाद गाँववाले अपनी चिट्ठी-पत्री, विभिन्न समस्याएँ लेकर प्रायः ही उनके पास ही आते थे परन्तु उनके पति को यह अस्वीकार था। उन्होंने अपनी पत्नी को सदैव ही हवेली के अन्तरमहल तक ही सीमित रखना चाहा। शशांक की माँ भी हवेली रूपी पिंजरे में क़ैद होती चली गई। हाँ, उसे एक निरापद आश्रय अवश्य प्राप्त हुआ और साथ ही साथ प्राप्त हुआ 'मालकिन', 'गृहस्वामिनी' की पदवी। "हमने सारी पढ़ाई लिखाई झोंक दी स्टेट बचाने में, मालकिन बनने में... कहाँ पता था कि हम शोषण करवा रहे हैं और हमें पता ही नहीं अपनी गुलामी का ....कितनी महीन साजिश है न?"[10] परंतु दो घटनाओं ने उनके आत्मसम्मान को गहरी ठेस लगी और उन्होंने तलाक लेने का फैसला किया। पहली घटना, पंचायत चुनाव मे गांव वाले मालकिन को खड़ा करना चाहते थे परंतु मलिक जाकर अपना नामांकन का पर्चा भर आते है दूसरी घटना यह हुई की बहु की सोने की चैन चोरी होने पर जब मालकिन अपनी चैन बहू को अपनी मर्जी से देती है और इस कारण मालिक गहनों का बक्सा बैंक मे जमा कर देते है और मालकिन को कहते हैं "गहना बांटती है हमसे बिना पूछे.... कल को सारा बाँट देगी.... मेरी गाढ़ी कमाई का सोना है। ऐसे कैसे बांट देंगी आप....? पूछती तो एक बार....?"[11] आयु के इस पड़ाव पर उनसे और बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने तलाक के रूप में अपना विद्रोह कर दिया "औरत को कितना भी सता लो, उसके सपने बदल दो, जीवन की दिशा मोड़ दो, उसके इगो पर कभी पैर मत रखना.... किसी भी उम्र की स्त्री हो, अगर पढ़ी-लिखी, विवेकवान है, तो एक दिन उसके भीतर स्वाभिमान जागता ही है...."[12] वह, शशांक और माया के साथ ऋषिकेश भी गई, तीनों ने मिलकर भविष्य की कई परियोजनाएं भी निर्मित की। शशांक और माया की निकटता से उनको सुखानुभूति होती परन्तु वह शायद पूर्ण रूप से पिंजरे की क़ैद से मुक्त नहीं हो पाई थी। सब कुछ त्यागना क्या इतना आसान है? किसी पारिवारिक अनुष्ठान के कारण वह गाँव वापस चली गई, परन्तु पुनः लौटने की प्रतिश्रुति देकर।

पैंतालीस वर्षीया चित्रकारा, सुनन्दा सुमन सिंह भी इस पिंजरे की क़ैद से बाहर निकलने को आकुल है। माया ही उसका माध्यम बनती है। सुनन्दा के पति ही उसकी प्रतिभा के विकास में सबसे बड़े बाधक है परन्तु सुनन्दा भी शायद पूर्ण रूप से पिंजरे को तोड़, पंख फैलाकर उड़ने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं है। वह अपने पति को छोड़ नहीं पाती है। अतः उसने मध्यम मार्ग का चुनाव किया। पति से सम्बन्ध विच्छेद तो नहीं किया पर एक प्रकार से वह अपने पति के प्रति निर्विकार सी हो गई। अपने भीतर ही उसने अपनी मुक्ति का मार्ग खोजा। "कई बार एक उम्र के बाद पुरुष भी स्त्रियों को मुक्तकर देते हैं जब पूरा जी लेते हैं स्त्रियों को, निचुड़े हुए

नींबू की तरह उछाल देते हैं। जिसे वह अपनी उदारता बताते हैं, वह उनका असली चरित्र होता है। कुछ पुरुषों को मोनोपॉजियन स्त्रियाँ यूजलेस लगती है"[13] शायद सुनन्दा भी इसी दौर से गुजर रही थी।

लेखिका ने सुनन्दा के द्वारा महर्षि च्यवन और सुकन्या की पौराणिक कथा का भी उल्लेख किया है जो प्रासंगिक भी लगा और इससे पाठक वर्ग को विविधता भी मिलती है। माया सुनन्दा के मैसज पढ़ते हुए विचार करती है "वह अपने आसपास सिर्फ मुक्त भोगी स्त्रियों से घिर गई है एक अलग मुल्क बन रहा है जहां स्त्रियां ही स्त्रियां विचरण कर रही है सबके हाव -भाव अलग-अलग है क्या उसके पास कोई लेडिस आइलैंड बन रहा है चारों तरफ पानी पानी दिखाई दे रहा है।"[14] माया, डिलाइला की मृत्यु का समाचार सुन गोवा जाती है। अपनी मृत सहेली की कब्र पर वह केवल शोक ही नहीं मनाती, अपितु उसके घर जाकर उसके बच्चों से मिली, उनके साथ रही, उन्हे उनका हक दिलवाया फिर, डिलाइला के पति, विशाल, को खोज कर सर्वसमक्ष उसे जोर से दो थप्पड़ भी मारती है। शशांक की सहायता से विशाल बांडेकर के अवैध खनन व्यवसाय का दीवाला निकाल देती है। मानो वह अपनी सहेली का बदला ले रही हो। जिस विशाल के लिए डिलाइला ने अपना धर्म त्यागा, डिलाइला से जया बांडेकर बन गई उसी विशाल ने उसको त्याग दिया। डिलाइला भी अपूर्व प्राणशक्तिसे परिपूर्ण थी। एक पुरुष द्वारा छली जाने पर भी उसका प्रेम पर से विश्वास न उठा। उसने पुनः प्रेम किया था श्रीकांत से। वो कहती थी "देखना मायू हम सिंगल जिएगा बट सिंगल मरेगा नहीं"[15] गोवा में ही दूसरों को नृत्य सिखाकर उपार्जन करती थी डिलाइला, एक दिन नाचते-नाचते ही सहसा गिर पड़ी और मृत्यु ने ही उसे उसके सभी दुःख कष्टों से मुक्तिदिलाई।

उपन्यास का अन्त कोविड महामारी के बढ़ते मामलों और देश भर में होने वाले लॉक डाउन की ओर इंगित करता है पर फिर भी आशा की एक किरण स्पष्ट दिखाई पड़ती है - माया और शशांक की बढ़ती निकटता। माया और शशांक - दोनों ने ही विच्छेद का दुख, संताप भोगा है। एक दूसरे का साहचर्य उन्हें अच्छा लगता है। दो प्रौढ़ मनुष्य, एक स्त्री और एक पुरुष अपने पिछले जीवन से सीख लेकर, अब एक दूसरे का हाथ थामे आगे बढ़ने के लिए तत्पर है। इस सम्बन्ध को यदि विवाह नामक संस्थान का नाम नहीं भी दिया गया तब भी यह सरल निश्छल प्रेम और दोस्ती, यह एक दूसरे के सुख की कामना करना ही यह जीवन के लिये पर्याप्त होगा।

लेखिका ने, इस उपन्यास में, नागरिक संशोधन कानून के विरुद्ध, शाहीन बाग में, मुस्लिम महिलाओं के आन्दोलन, उबर मामले का भी उल्लेख किया है। चाहे किसी भी राजनीतिक दल या पन्थ के प्रति झुकाव क्यों न हो, इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस आन्दोलन ने सिद्ध किया कि महिलाएं अपने बल बूते पर ही एक विशाल आन्दोलन का संचालन कर सकती है। लेखिका माया के जरिये समाज के हर स्त्री पात्र को हमारे समक्ष लेकर आयी; साथ ही पुरुष पक्ष को भी उसने सामने रखा है कि सभी पुरुष एक समान नहीं होते। सभी स्त्री पात्रों - माया, डिलाइला माल्विका, सिन्दूरी, संचिता, सुनन्दा, शशांक की माँ सबके मार्ग अलग है, और सभी किसी न क़ैद से, सभी अपने जीवन के किसी न किसी प्रकार के संघर्ष से जूझ रही हैं। परिवार और समाज की इस कैद से बाहर निकल कर स्वतंत्र होकर, मुक्त होकर उड़ना चाहती है। अपनी जिंदगी अपने मुताबिक जीना चाहती हैं, जो उनके लिए इतना आसान नहीं है पर वह हार नहीं मानती क्योंकि सबका एक ही ध्येय है - 'मुक्ति', 'क़ैद बाहर'।

आधार ग्रंथः

1. कैद बाहर : गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023
2. वही, पृष्ठ संख्या - 69
3. वही, पृष्ठ संख्या - 82
4. वही, पृष्ठ संख्या - 80
5. वही, पृष्ठ संख्या - 7
6. वही, पृष्ठ संख्या - 24
7. वही, पृष्ठ संख्या - 28
8. वही, पृष्ठ संख्या - 30
9. वही, पृष्ठ संख्या - 64
10. वही, पृष्ठ संख्या - 100
11. वही, पृष्ठ संख्या - 102
12. वही, पृष्ठ संख्या - 101
13. वही, पृष्ठ संख्या - 143
14. वही, पृष्ठ संख्या - 97
15. वही, पृष्ठ संख्या - 10

सहायक ग्रंथः

1. भविष्य का स्त्री विमर्श : ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
2. नारी चेतना और स्व का बोध : प्रो. कुमुद शर्मा, पाञ्चजन्य, राष्ट्रीय हिन्दी साप्ताहिक
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : डॉ बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1996

शोध निदेशक : प्रो बिजेंद्र कुमार

डॉ भीमराव अंबेड़कर कॉलेज

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोधार्थी

दिल्ली विश्वविद्यालय

अमृत काल में हिंदी सिनेमा का परिदृश्य

डॉ गोकुल क्षीरसागर

हमने हाल ही में भारतीय आजादी का अमृत महोत्सव मनाया है। 14 सितंबर, 2024 को संविधान सभा द्वारा हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकारने के 75 वर्ष पूर्ण हो गए हैं। अतः यह वर्तमान वर्ष राजभाषा हिंदी का भी अमृत महोत्सव वर्ष है। इन 75 सालों में हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य के साथ साथ हिंदी सिनेमा भी बहुत समुन्नत हुआ है। एक सदी की उम्र वाले हिंदी सिनेमा ने आज न केवल तकनीकी और रचनात्मक उँचाइयों को छुआ है, अपितु हिंदी सिनेमा हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का भी प्रतिबिंब बना हुआ है। ज्ञातव्य है कि हमारी कलाओं का इतिहास बहुत प्राचीन और उतना ही समुन्नत रहा है। भारत में लगभग चौंसठ कलाएँ मानी जाती हैं। साहित्य, शिल्प, चित्र, संगीत, गायन, वादन, नर्तन आदि कलाओं में सिनेमा आधुनातन कला के रूप में जुड़ गई है। किंतु निर्माण की दृष्टि से सबसे कम उम्र वाली होकर भी इस दृश्य-श्राव्य कला ने आज जनमानस पर गहरा प्रभाव छोड़ दिया है। वास्तव में जिसे हम सिनेमा के नाम से जानते है वह चित्रकला, संगीत, साहित्य आदि कलाओं के समन्वय एवं यांत्रिक उपादानों द्वारा निर्मित आधुनिक कला है। इस भारतीय सिनेमा के उद्‌भव के बीज विश्व सिनेमा में मिलते हैं। वैसे विश्व 1895 ई. में लुमेयर बंधुओं द्वारा निर्मित 'लंच अवर ॲट द ल्युमअर फॅक्टरी' के रूप में दुनिया का प्रथम सिनेमा बना। किंतु इस सिनेमा के बनने के पहले कई लोगों ने जद्दोजहद की थी। जिनकी क्रियाशीलता का प्रतिफल यह फिल्म थी। इसी फिल्म से प्रभावित होकर भारतीयों ने प्रथम भारतीय फिल्म बनाई। सिनेमा के उद्‌भव की कहानी उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही शुरू हुई है । प्रस्तुत आलेख में हिंदी सिनेमा के उद्‌भव से लेकर उसकी आज तक की सुदीर्घ एवं समुन्नत विकास- यात्रा के व्यापक परिदृश्य को सूत्रात्मक रूप में विवेचित एवं विश्लेषित किया गया है।

विश्व सिनेमा का आरंभ :- प्राचीन गुफाओं (फ्रॉन्स की लॅसकाँ गुफा) में हमारे पुर्वजों ने कुरेदे हुए चित्रों में सिनेमा या चलचित्र के बीज मिलते हैं। जिन चित्रों में प्राणियों की गतिविधियों को दिखाने का प्रयास किया गया है। सामान्यतः गुफाओं की दीवारों पर कुरेदे गए चित्र चलचित्र के जन्म का सामान्य कारण माना जा सकता है। फिर भी चलचित्र के जन्म के लिए पीटर मार्क रोझे द्वारा 1924 ई. में इंग्लैंड की रॉयल सोसायटी में प्रस्तुत प्रबंध 'परसिस्टेन्स ऑफ विजन थ्योरी' महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ, जिसने चित्रों में गतिशीलता की संभावनाओं को जन्म दिया। साथ ही छायांकन तंत्र का विकास और छायांकन करने के लिए पारदर्शक सेल्यूलाइड फिल्म की खोज के बिना चलचित्र का निर्माण संभव न था। सामान्यतः 1870 ई. तक छायांकन तंत्र का काफी विकास हुआ था। 1872 ई. में इंग्लैंड के कैमरामन एडवर्ड माइब्रिज ने प्रति फीट एक कैमरा इस अनुपात में कुल 24 कैमरों को एक लकीर में रखकर दोड़ते घोडे की एक साथ 24 छवियाँ ली। इसके पश्चात सन् 1882 में फ्रांस के वैज्ञानिक एट्येन इ्युल मारे ने छायांकन के लिए 'फोटोग्राफिक गन' बनायी। कुछ दिनों बाद इसी फोटोग्राफिक गन में जॉर्ज डेमिनी नामक सहायक की मदद से मारे ने कुछ तकनीकी सुधार कर 'कोनोफोटोग्राफ' नामक छायांकन का कैमरा बनाया। इसी समय 1885 ई. में जॉर्ज इस्टमन ने छायांकन हेतु पहली सेल्युलाइड फिल्म बनायी। इस फिल्म का प्रयोग कर छायांकन करनेवाला कैमरा विल्यम फ्रीज ग्रीन ने बनाया। यह कैमरा चलचित्र तंत्र के विकास में एक ठोस कदम था।

फिर भी चलचित्र तंत्र को जन्म देनेवालों में महत्वपूर्ण स्थान थॉमस एडिसन का है, जिन्होंने 1889 ई. में अपने सहयोगियों की सहायता से 'किनेटोग्राफ' नामक छायांकन का कैमरा बनाया, साथ ही उसमें सेल्युलाइड फिल्म का प्रयोग कर 600 चित्रों की शृंखला भी बनायी। 'किनेटोग्राफ' के अविष्कार के बाद एडिसन ने छायांकित चित्रों को देखने के लिए प्रकाश के माध्यम से चित्र दिखानेवाला 'किनेटोस्कोप' नामक प्रोजेक्टर भी बनाया। चलचित्र निर्माण में एडिसन की महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करते हुए जगदीशकुमार निर्मल ने लिखा है- "चलचित्रों का सर्वमान्य प्रथम अन्वेषक थॉमस एडीसन को ही माना जाता है। उसने अपने प्रतिभावान सहायक विलियम केनेडी-लारे-डिकसन के साथ पूरे 10 वर्ष के प्रयोगों के पश्चात् एक चलचित्र कैमरा निर्माण किया।"[1] इस प्रकार चलचित्र के जन्म में एडीसन का महत्वपूर्ण स्थान है। एडीसन का केनेटोग्राफ की कल्पना के आधार पर फ्रांस के ल्युम्येअर बंधुओं ने कैमरा तथा प्रोजेक्टर का एकसाथ काम करनेवाला 'किनेटोग्राफ द प्रोजेक्शन' नामक यंत्र बनाया। इसे ही बाद में 'सिनेमॅटोग्राफ' नाम से संबोधित किया गया। ल्युम्येअर बंधुओं ने अपने सिनेमॅटोग्राफ के द्वारा 28 मार्च 1895 ई. में 'लंच अवर ॲट द ल्युम्येअर फॅक्टरी' यह प्रथम चलचित्र प्रदर्शित किया। प्रथम चलचित्र देनेवाले वैज्ञानिक को स्पष्ट करते हुए 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में लिखा है 'The Pioneers of actual motion pictures, Thomas A Edison in united states and the brothers Auguste and louis Lumiere in France, sought to exploit their cinema machines, the vitascope and the cinematographe."[2]

भारत में सिनेमा :- चलचित्र के जन्म के एक साल बाद 1896 ई. में भारत में पहला चलचित्र मुंबई के वाट्सन होटल में दिखाया गया। 'सिनेमॅटोग्राफ का प्रवेश', 'रेलगाडी का आना, 'इमारत को गिराना', 'समुद्र में स्नान', 'कारखाने से छूटते हुए मजदूर' जैसे कुछ लघु चलचित्र इसी होटल में दिखाये गए। इन लघुचित्रों के प्रदर्शन के कुछ दिनों बाद ही इन्हीं फिल्मों का व्यावसायिक प्रदर्शन भी मुंबई में आरंभ हुआ। ये चलचित्र भारतियों के लिए विस्मय का विषय था। इस संदर्भ में फिरोज रंगुनवाला ने लिखा है- "उस सुबह (7 जुलाई, 1896) के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में 'सिनेमैटोग्राफ' के आने की घोषणा मनोरंजन कार्यक्रम के स्तंभ में, जहाँ नाटकों के साथ-साथ ब्रांडी और वीस्की और विविध मनोरंजन कार्यक्रम के विज्ञापन रहते हैं, की गयी थी। विज्ञापनों में अलबत्ता उसे 'इस सदी का चमत्कार' और 'विश्व का एक विस्मय' की संज्ञा दी गयी थी। फ्रांस के ल्युम्येअर ब्रादर्स के एजेंट उसे बंबई (मुंबई) लाये थे।"[3] इन फिल्मों के अतिरिक्त भारत में कुछ ऐसी भी फिल्में प्रदर्शित होने लगी, जिनका छायांकन विभिन्न स्थानों पर हुआ था। 'हमारा भारतीय साम्राज्य', 'लखनउ का महान इमामबाडा', 'मुंबई स्टेशन पर रेलगाडी का आगमन' जैसी फिल्में भारतीय लोकेशन पर चित्रित होकर भी, ये पूर्णतः विदेशी फिल्मकारों द्वारा बनायी फिल्में थीं।

भारत में आरंभिक स्वदेशी चलचित्र-निर्माता के रूप में हरिश्चंद्र सखाराम भाटवडेकर उर्फ सावेदादा को जाना जाता है। सावेदादा पहले भारतीय थे, जिन्होंने लंदन से ल्युम्येअर का सिनेमैटोग्राफ मंगवाया था। इसी कैमरे के माध्यम से सावेदादा ने प्रथम भारतीय फिल्म बनायी। इस बात को स्पष्ट करते हुए श्री मनमोहन चड्डा ने लिखा है- "कैमरा आ जाने के बाद उन्होंने (सावेदादा ने) बम्बई (मुंबई) के हैगिंग गार्डन पर एक कुश्ति का आयोजन किया और साथ ही इस कुश्ति को फिल्मांकित कर लिया। सावेदादा की दूसरी फिल्म सर्कस के बंदरों को प्रशिक्षित किये जाने के विषय पर आधारित थी। इन दोनों फिल्म पट्टियों को

धुलने के लिए इंग्लैंड भेजा गया था तथा सन् 1899 में इन फिल्मों को भारत में प्रदर्शित विदेशी फिल्मों के साथ ही दिखाया गया था।"[4] इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरण से यह बात स्पष्ट होती है कि सावेदादा द्वारा निर्मित ये प्रथम भारतीय फिल्में थीं। इन फिल्मों को धुलने के लिए इंग्लैंड भले ही भेजा गया हो, मात्र इस कारण के आधार पर इन फिल्मों को भारतीय फिल्में होने से नकारा नहीं जा सकता। भारत में प्रथम चलचित्र बनानेवाले फिल्मकार के रूप में सावेदादा के स्वीकृति प्रदान करते हुए श्री फिरोज रंगुनवाला ने लिखा है- "इसी दौर में' (1899) 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के 'लोकल एंड प्रोवोन्शियल' स्तंभ में फिल्मों पर टिप्पणियाँ छपने लगी थीं। और उस शताब्दी के अंतिम वर्ष के अंतिम मास में (दिसंबर 1899) प्रथम स्वदेशी फिल्म बनाने का गौरव भी सावे दादा प्राप्त कर चुके थे।"[5] फिरोज रंगुनवाला ने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' का संदर्भ देते हुए दिसंबर, 1899 में प्रदर्शित सावेदादा की फिल्म को भारत की प्रथम चलचित्र माना है। इन फिल्मों के अतिरित सावेदादा ने 1901 ई. में र. पु. परांजपे के भारत वापसी के अवसर पर आयोजित स्वागत-समारोह का छायांकन किया था। इस फिल्म को भारत का प्रथम वृत्तचित्र मानते हुए मनमोहन चड्ढा ने लिखा है- "सन् 1901 में बनी इस फिल्म को भारत का पहला वृत्तचित्र भी माना जाता है।"[6] इस उद्धरण के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि ल्युम्येअर बंधुओं का 'लंच अवर ॲट द ल्युम्येअर फॅक्टरी' दुनिया का प्रथम चलचित्र है तो सावेदादा द्वारा 1901 ई. में बनाया यह भारत का प्रथम चलचित्र होना चाहिए। भारत में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में सावेदादा के अतिरिक्त एफ. बी. थानावाला तथा हीरालाल सेन जैसे फिल्मकार लघु-फिल्में बना रहे थें। किंतु भारत में प्रथम कथा-चित्र बनने के लिए 1912 ई. तक इंतजार करना पड़ा।

भारतीय कथा-चित्र (फिचर-फिल्म) के प्रथम निर्माता के रूप में श्री. दादासाहब फाळके को जाना जाता है। किंतु दादासाहब फाळके द्वारा निर्मित 'राजा हरिश्चंद्र' के पहले कुछ कथा-चित्र भारत में बने थें। इनमें महत्वपूर्ण स्थान श्री दादासाहब तोरणे द्वारा निर्मित 'पुंडलिक' का है। श्री. तोरणे ने भारतीय पौराणिक कथा पर आधारित 'पुंडलिक' यह चलचित्र 18 मई, 1912 ई. में मुंबई के कोरोनेशन थिएटर में प्रदर्शित किया। आज की तिथि में यह फिल्म उपलब्ध नहीं है, किंतु तत्कालीन, 'टाइम्स ऑफ इंडिया' इस दैनिक अंग्रेजी पत्र तथा नवंबर, 1953 ई. में प्रकाशित 'स्क्रीन' पत्रिका में दादासाहब तोरणे द्वारा लिखित आलेख के आधार पर फिल्म समीक्षकों ने 'पुंडलिक' को भारत का प्रथम कथा-चित्र माना है।

1912 ई. में बनी 'पुंडलिक' के अतिरिक्त अन्य दो फिल्मों का भी जिक्र भारत की आरंभिक फिल्मों के रूप में किया जाता है। जिनमें से एक थी 'सावित्री' जो सत्यवान-सावित्री की पौराणिक कथा पर आधारित थी। इसका निर्माण पाटणकर फ्रेंड्स एंड कंपनी के एस. एन. पाटनकर, वी. पी. दिवेकर और एन. पी. करंदीकर ने किया था। किंतु 'सावित्री' का किन्हीं कारणों से प्रदर्शन नहीं हो पाया था। 'सावित्री' के अतिरिक्त इस साल में बननेवाली दूसरी फिल्म थी- 'रामायण का एक कांड'। इस फिल्म के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार 1912 ई. में प्रदर्शित इन फिल्मों को नकारते हुए प्रायः विद्वानों ने भारत का प्रथम चलचित्र के रूप में 'राजा हरिश्चंद्र' को स्वीकृति दी है।

(शेष अगले अंक में)

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज,
शेवगाँव, जिला-अहिल्यानगर,
महाराष्ट्र-414502.

आत्मकथा

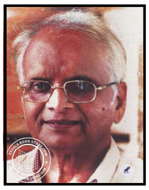

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

चौदहवाँ देवपद - कलालोक

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

केरल कलामण्डलम में आने के बहुत पहले ही किल्लीक्कुरिश्शिमंगलम नामक गाँव के "कुंचन स्मारक" की प्रशासन समिति का मैं अंग था। (ओट्टन तुल्ल नामक कला के उपज्ञाता एवं सुप्रसिद्ध प्रतिभा-संपन्न कलाकार थे श्री कुंचन नंपियार। उनके स्मृति-चिह्न के रूप में तुल्लल सिखाने के लिए यह संस्था स्थापित की गई थी।) इस संस्था के साथ मेरा करीब तीस साल का नाता था। सरकार की तरफ से अपमानित हो कलामण्डलम से मुझे लौट जाना पड़ा तो मैंने स्वयं इस्तीफ़ा देकर कुंचन स्मारक से बिदा ले ली। इस प्रकार मैने सरकार के प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की थी। तिरुवनंतपुरम से किल्लिक्कुरिश्शिमंगलम तक जाने-आने के लिए सरकार ने जो यात्रा-भत्ता मुझे दी थी उसका कुछ अंश तुल्लल सीखनेवाले किसी विद्यार्थी को हर साल पुरस्कार स्वरूप देने का प्रबंध भी मैंने किया है।

केरल कलामण्डलम में काम करते समय कभी कभी गुरुवायूर जाकर भगवान श्रीकृष्ण की अलौकिक शोभा पूर्ण मूर्ति के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे मिलता था। ऐसे मौके पर गुरुवायूर देवस्वम प्रशासन समिति (Guruvayoor Devaswom Managing Committee) के अध्यक्ष श्री पी.टी मोहनकृष्ण ने मुझ से कहा कि श्रीकृष्ण के परम भक्त पूजनीय कवि श्री पूंतानम नंपूतिरी की कविताओं को समाहृत कर पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना है। मैंने यह दायित्व ले लिया और कठिन प्रयत्न कर "पूंतानम दिन' के समारोह के अवसर पर इस ग्रंथ का प्रकाशन हो गया था और मंदिर में बैठ कर भगवान के सामने उन कविताओं का मैंने पारायण भी किया था। धन्य हूँ मैं। मेरी बड़ी प्रशंसा भी हुई थी। आज भी कुंभ के (फाल्गुन) महीने के अश्वती नक्षत्र के दिन, जो कि कवि पूंतानम का जन्म नक्षत्र माना जाता है। यह समारोह चलता है। उनकी कविताओं पर चर्चाएँ होती है; कवि सम्मेलन एवं काव्य पाठ होते हैं। मंदिर के निकट ही मैंने रहने के लिए एक छोटा सा फ्लाट (flat) खरीदा ताकि कभी कभी वहाँ जाकर भगवान का दर्शन करे।

मुख्यमंत्री श्री के करुणाकरन भगवान कृष्ण के बड़े भक्त थे और वे हर महीने के पहले दिन भगवान के दर्शन करने गुरुवायूर जाते थे। गुरुवायूर में रहते समय मुझे उनसे मिलने के अनेक अवसर मिले थे। वे तो अत्यंत ऊर्जस्वी, कर्मठ, दृढचित्त एवं प्रेरणादायक व्यक्ति थे। उनका प्रेम और वात्सल्य मैं कभी भूल नहीं सकता। उनके सिवा महाकवि श्री अक्कित्तम, प्रोफसर पी सी वासुदेवनइळयतु, मेरे गुरु प्रोफसर के पी नारायण पिषारडी, अपने बंधुगण श्री रामन मूस्सदु और उनका भाई वैद्य श्री कृष्णन मूस्सदु आदि बहुत से उन्नत शीर्ष व्यक्तित्वों से मिलने के अनेक मौके मुझे वहाँ मिलते थे। इनके सिवा आयुर्वेद के महान आचार्य श्री वैद्यमठम छोटे नारायण नंपूतिरी से भी मैं कभी कभी मिलता था। वे तो हर महीने भगवान का दर्शन करने गुरुवायूर आते थे। कभी मैं उनके 'इल्लम' (घर) पर जाकर अपनी चिकित्सा करवाता था और दवाइयाँ लेता था। उन्होंने

अपने 'आशत्रिकम' नामक ग्रंथ की भूमिका लिखी थी। गुरुवायूर में रहते मुझे सर्वाधिक लाभ यह हुआ कि भगवान कृष्ण की लीलाओं से संबंधित अपने 'कृष्णनाट्टम' नामक पुस्तक की रचना हुई है। प्रोफेसर वासुदेवन इलयतु ने इसका संपादन कर प्रकाशित किया है। (कृष्णनाट्टम ऐसा एक 'गीति-नृत्य' है जिसका अवतरण आठ दिन से पूर्ण होता है। कृष्ण लीला के आठ अध्याय इस में वर्णित हैं। वे हैं - कृष्णावतार कालिययमर्दन, रासक्रीड़ा, कंसवध, स्वयंवर, बाणयुद्ध, विविदवध, स्वर्गारोहण। स्वर्गारोहण के बाद अगले दिन कृष्णावतार फिर से खेला जाता है। इस प्रकार यह रंग कला नौ दिन तक श्रीकृष्ण के मंदिरों में अवतरित की जाती है। रात की पूजा आदि के बाद गर्भगृह बंद होने पर मंदिर की भीतरी प्रदक्षिण-वीथि ही इसका रंगमंच है। वहाँ एक बड़ा दीपक जलाकर रखा जाता है और विश्वास किया जाता है कि भगवान भी यह नृत्य देखने के लिए दर्शकों के साथ आकर बैठते हैं।) इन्होंने मेरे 'अंजनरेखा' नामक पुस्तक की भूमिका लिखी है।

सुप्रसिद्ध नर्तक श्री गुरु गोपिनाथ के प्रिय शिष्य थे नर्तक श्री गुरु गोपालकृष्ण। वे तो अपने परिवार के साथ तृश्शूर जिला के कोटुंगल्लूर नामक नगर में रहते थे और कभी कभी भगवान के दर्शन के लिए गुरुवायूर आते थे। वे तो मेरे पूर्व परिचित थे। गुरुवायूर में आकर उनके और उनके परिवार के साथ का वह संबंध और भी दृढ़ हो गया था। उन दिनों की हमारी चर्चाओं के फलस्वरूप कोटुंगल्लूर में नाट्यशाला संबंधी कोई कार्यशाला संगठित की गई थी। मैं उसका संचालक था और नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों के बारे में कार्यशाला में भाग लेनेवाली नर्तक-नर्तकियों को पढ़ाता भी था। गुरु श्री के पी नारायण पिषारड़ी, अम्मन्नूर श्री माधव चाक्यार आदि महान पंडितों के भाषण होते थे तथा बड़े कलाकारों के सोदारहण भाषण भी होते थे। तीन दिन की कार्यशाला थी और हर दिन शाम को मोहिनियाट्टम, केरलनटनम, तिरुवातिराक्कलि इत्यादि केरल की विशिष्ट कलाओं के अवतरण भी होते थे। गुरु श्री गोपालकृष्ण और उनकी पत्नी श्रीमती कुसुमम ने अपने को तन-मन-धन से समर्पित कर इस कर्मशाला को सफल कर दिया था। कोटुंगल्लूर राजमहल के श्री गोदवर्मा ने इस कार्यशाला का उद्घाटन किया था और उन्होंने ही तीसरे दिन के सम्मेलन में आदरणीय अतिथियों को पुरस्कार समर्पित किया था।

प्राचीन काल में कोटुंगल्लूर राजमहल ने बड़े-बड़े विद्वान-विदुषियों को ही नहीं; महान कवि-कवयित्रियों को भी जन्म दिया था। उनमें सबसे यशस्वी थे कोटुंगल्लूर कुंजिक्कुट्टन तंपुरान जिन्होंने व्यास रचित महाभारत का मलयालम भाषा में अतुलनीय अनुवाद किया है। कवि सार्वभौम के नाम से विख्यात श्री कोच्चुण्णि तंपुरान का जन्म भी इसी राजमहल में हुआ था जिनका छायाचित्र कार्यशाला के रंगमंच पर प्रतिष्ठित कर उनके प्रति हम ने श्रद्धांजलि प्रकट की थी। इन महानुभावों के जन्मगृह का दर्शन कर मैंने अपने को धन्य माना। केरल के सांस्कृतिक इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण इस राजमहल की वर्तमान जीर्ण-शीर्ण अवस्था देख मेरा मन व्याकुल हो गया था। यहाँ के काली मंदिर के साथ राजमहल का अटूट संबंध है। 'कोटुंगल्लूरम्मा' के नाम से यहाँ की देवी जानी जाता है। काली के उग्र रूप के साथ ही उनका मातृवात्सल्य भी भक्तों को आकृष्ट करते हैं; माँ के सम्मुख भक्त जन आत्म समर्पण करते हैं। यही धार्मिक भावना एवं सांस्कृतिक विचारधारा कोटुंगल्लूर की अमूल्य संपत्ति है। यहाँ से कुछ ही दूर पर तृक्कुलाशेखरापुरं नामक प्रदेश में महाविष्णु का एक मंदिर है। उनका दर्शन भी मैंने किया था। यहाँ के महाराजा श्री कुलशेखर वर्मा ने हज़ारों वर्ष पहले 'मुकुंदमाला' नामक काव्य की रचना की थी। एक बार 'सेवा-प्रतिष्ठान' का निमंत्रण स्वीकार मैंने श्री कुलशेखर वर्मा की देन के बारे में वक्तृता दी थी।

(क्रमशः)

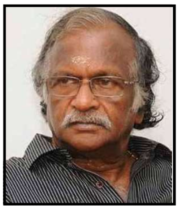

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी **अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार**

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

उन्होंने कहा : "अंबू तू डॉक्टर है। तिरुवितांकूर में से ही कलकत्ता जाकर उपाधि प्राप्त करनेवाले पाँच या छः दंत वैद्य ही तो हैं। तू अब कोल्लम, चेंगन्नूर आदि स्थानों में जाकर इलाज भी करते हो न, तुझे लोग 'पड़ि केट्टि' (पैसा देकर) तो ले जाते हो न? यही काफ़ी है"...कार ले आकर, चिकित्सा का फीस पहले से ही देकर, ले जाने को ही 'पड़िकेट्टि कोण्डुपोवुका' कहा जाता है। "कोच्चाट्टा, पैसा ही सब कुछ नहीं है। पैसा कोई भी बना सकता है। हम जनता का जो समर्थन प्राप्त करते हैं उसके आगे पैसा कुछ भी नहीं है। हमारे खानदान का नाम बुलंद करना है.... छोटा भाई एवं बड़े भाई शत्रु बन गए। पुत्तूर करिम्पालेत्तु वैर इस प्रकार बढ़ता गया।

तिरुवितांकूर महाराजा द्वारा जनता से चुने जानेवाली जनप्रतिनिधि सभा थी उस समय की प्रजा सभा। महान अय्यंकाली आदि प्रजा सभा के सदस्य रहे थे। श्रीमूलं तिरुनाल महाराजा ने चुनाव के द्वारा एक जनप्रतिनिधि सभा (उपरिसभा) बनाने का निश्चय किया। श्रीमूलं पोपुलर असेंब्लि। लेकिन जिनके पास अपनी जायदाद थी सिर्फ उनको ही मतदान का हक था। हरिप्पाट्टु (कार्तिकाप्पल्लि) क्षेत्र से चुनाव लड़ने को चाचाजी ने निश्चय किया। मण्णारशाला नागराज मंदिर के मुख्य नंपूतिरी और अधिवक्ता रामकृष्ण पिल्लै विपक्षी थे। 'मण्णारश्शाला तिरुमेनी (पुजारी) को मतदान न देनेवालों को साँप डस लेगा" इस प्रकार उम्मीदवार के प्रवर्तकों ने प्रचार किया। तब चाचा ने कहा - "हम गरुड़ की उपासना करनेवाले विषवैद्य हैं। साँप हमारा कुछ भी नहीं बिगडेगा।"

चुनाव में बडे बहुमत से डॉक्टर पी सी पद्मनाभन तंपी विजयी होकर एम एल सी बने। मुक्त में नहीं। बंटवारे में अपने का जो भाग मिला था उसमें से कुछ विरिप्पु खेत और दूसरा एक अहाता बेच लिया। मतदान देकर आनेवाला हर एक मतदाता को तंपी महोदय की ओर से एक सौ एक रुपए और एक जरीदार धोती। मण्णारशाला नंपूतिरि और वकील रामकृष्ण पिल्ला को मतदान देनेवाले लोग भी चाचाजी के आगे नत-मस्तक होकर रुपये और धोती लेके गए।

उस समय एक पवन (आठ ग्राम) सोने का दाम तेरह ब्रिटीश रुपए थे। यह भी ध्यान देना चाहिए। उस काल में ब्रिटीश रुपए और महाराजा के सरकारी रुपए होते थे। (अठाईस चक्रं एक सरकारी रुपया। साढे अठाईस चक्रं एक ब्रिटीश रुपया) चाचाजी की पत्नी (मेरी प्रिय चाची) चाचाजी के अपने ही चाची की बेटी ही थी। मेरे दादाजी रूपी कैतोलत्तु वेलुप्पिल्ला की भतीजी शंकरियम्मा। चाची विवाहित होकर खानदान में आते समय मेरी माँ छोटी लड़की थी। इसलिए

चाची ने मेरी माँ को बेटी के समान माना। लेकिन मेरी दोनों बड़ी माँ चाची से जलती थीं। उनका अद्‌भुत सौंदर्य, कार्यक्षमता आदि ननदों के झगड़े के लिए पर्याप्त कारण बने। यही नहीं, मैं एम एल सी पत्नी हूँ, अवसर के अनुसार ऊपर उठना चाहिए। वेष एवं आभूषणों में बदलाव करना चाहिए, साथ ही सखियों के रूप में नौकरानियाँ चाहिए आदि का निर्णय भी चाची ने लिया।

एक घटना जो माँ ने बतायी थी, अब भी मेरे मन में है। एक बार श्रीमूलं असेम्ब्ली के सम्मेलन के लिए जाते वक्त चाची भी चाचाजी के साथ गईं। उस दिन तिरुवनंतपुरम में सरकारी कार्यालयों में विभाग अध्यक्षों में अधिकांश लोग अंग्रेज़ थे। इनमें से कुछ चाचाजी के मित्र बन गए। एक मदाम के गले में पड़ी एक विशेष प्रकार की माला का डिसाइन चाची को पसंद आई। उसी डिसाइन के सोने की माला मुझे भी चाहिए, कहकर चाची हट करने लगी.... दूसरा कोई चारा न होने पर चाचाजी आलप्पुष़ा जाकर गहना बनाकर लाये.... चाची ने माला लेकर जाँच की। जलन की आग भरी आँखों से तीनों ननदों के देखते रहते समय; 'डिसाइन मेरे कहे अनुसार का नहीं है' कहकर पीसने के पत्थर पर कस कर चाची माला को .....हथौड़े से मारकर छोटे टुकडे बनाकर आँगन की ओर फेंक दिया। नौकरानियाँ माला के छोटे टुकडों को जब चुन लेने का प्रयास कर रही थीं, तब शांत प्रकृतिवाले चाचाजी दूर की ओर देखकर विचारों में मग्न हो गए। माँ की बताई अनुभव कथायें ने ही मुझे 'दृश्यभाषा' की दुनिया में ले गया था। मन से माँ भी एक अच्छी लेखिका थी। इसीलिए ही माँ के चार पुत्रों में से तीनों ने उपन्यास लिखे थे।

जननेता बनने के बाद जनता की सेवा करनी चाहिए। देश को उन्नत बनाना चाहिए। उसके मार्ग क्या हैं? चाचाजी एवं अनुचर सोचने लगे। हरिप्पाट्टु एक टाउन हॉल चाहिए। उसका निर्माण कराने के लिए जन प्रतिनिधि के अलावा दूसरा कौन कदम उठाएगा? चाचाजी ने 'पुत्तियिल इल्लं' के युव जमींदार रूपी भास्करन मूस्सदु से सलाह मश्विरा की। मूस्सदु लोग मंदिर में तिडंबु मूर्ति की निशानी के हकदार हैं। हमारे बड़े महल के दक्षिण भाग में स्थित कोच्चुमठं नामक घर भी मूस्सदु लोगों का है। भास्करन मूस्सदु ने सहयोग देने का वादा किया। अन्य कुछ स्थानीय प्रमुख भी आगे आए। इस तरह टउन हॉल का निर्माण शुरू हुआ। पति की जायदाद को कम होते देखकर बुद्‌धिमती दादी ने अपने स्वदेश रूपी एरूवा में अपने को बँटवारे में प्राप्त ज़मीन पर एक घर बनाने की आवश्यकता रख दी। एरूवा में निर्मित घर को चाचाजी ने 'पुन्नूर' नाम ही रख दिया। सब कुछ बर्बाद करने के बाद मुझे और मेरी संतानों को रहने की एक जगह चाहिए न? चाची के इस प्रश्न का इस तरह एक तत्कालिक उत्तर तो मिल गया।

टाउन हॉल पूरा होने पर दूसरी एक जीवंत समस्या तंपी महोदय के अनुचरों के रूप में अभिनय करने वाले छोटे नेताओं ने सामने रख दिया। वेलायुध भगवान का 'वेलक्कुलं' अशुद्‌ध बने वर्षों बीत गए। यह दुर्गंध सहन करके ही 'वेला कलिक्कार' (स्थानीय कलाकार) उत्सवों के समय पत्थर के उस पडाओं से वेलकलि प्रस्तुत करते थे। वेलक्कुलम का निर्माण कर वेलायुधभगवान को तृप्त करना ही चाहिए। लेकिन पैसा कहाँ है.... ?अठारहवीं साल की उम्र में भी अविवाहित बनकर करिम्बालेत्तु घर में विवाह की उम्र पूरा करके खड़ी छोटी बहन भवानी को प्राप्त अपने पनंतिट्टा नामक ज़मीन पर चाचाजी की आँखें पड गईं। (क्रमशः)

सभा के आचार्य (बी:एड) कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ:मधुबाला जयचंद्रन आदि
सभा के मंत्री का अभिनंदन कर करे हैं।

सभा की सेवा से निवृत्त होने वाले सर्वश्री आर. बिंदु और श्रीकुमारन नायर
सभा का स्नेहोपहार स्वीकार कर रहे हैं।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication : 15-06-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

JUNE 2025

Vol. No. 62, Issue No.03
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

सेवा निवृत्त कर्मचारी श्रीमती आर. बिंदु और श्री.श्रीकुमारन नायर सभा के प्रति आभार प्रकट कर रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित प्रो.डी.तंकप्पन नायर, डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair, Dr.M.S.Vinayachandran and Dr.Renjith Ravisailam